अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,** हल्द्वानी
प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक**,** दूरस्थ शिक्षा केन्द्र **,** जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय**,**दिल्ली
प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग**,** एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय**,** श्रीनगर (गढ़वाल)
प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास**,** एस.एस.जीना विश्वविद्यालय**,**अल्मोड़ा

डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर**,** इतिहास एवं समन्वयक इतिहास**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,** हल्द्वानी
श्री विकास जोशी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर(एसी)**,** इतिहास विभाग**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,**

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन

ब्लॉक एक

इकाई एक- भारतीय राष्ट्रवाद का जन्मः कारण एवं कॉग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताये गये उद्देश्य- डॉ. जी.एम.जैसवाल,अवकाश प्राप्त आचार्य(इतिहास) कुमाऊं विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा परिसर

इकाई दो- प्रारंभिक दिनों में कांग्रेस की मांगें तथा उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन- डॉ. जी.एम.जैसवाल, अवकाश प्राप्त आचार्य(इतिहास) कुमाऊं विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा परिसर

इकाई तीन- उग्रवादी आन्दोलन के उदय के कारण- डॉ. जी.एम.जैसवाल,अवकाश प्राप्त आचार्य(इतिहास) कुमाऊं विश्वविद्यालय,

ब्लॉक दो

इकाई चार- बंगाल में उग्रराष्ट्रवाद और बंगाल का विभाजन- डॉ. जी.एम.जैसवाल,अवकाश प्राप्त आचार्य(इतिहास) कुमाऊं विश्वविद्यालय,

इकाई पांच- क्रान्तिकारी आन्दोलन- सुबीर डे, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

इकाई छह - विदेशों में क्रान्तिकारी कार्य और क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यॉकन- सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

ब्लॉक तीन

इकाई सात- साम्प्रदायिकता का उदय तथा विकास- सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

इकाई आठ- लखनऊ समझौता एवं मूल्यांकन, होमरूल लीग आन्दोलन -सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

इकाई नौ- गांधी जी का प्रारंभिक राजनीतिक जीवन - डॉ. जी.एम.जैसवाल,अवकाश प्राप्त आचार्य(इतिहास) कुमाऊं विश्वविद्यालय

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथ्वा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक

भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण एवं कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण

1.3.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.1.2 मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.2 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण

1.3.2.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना

1.3.2.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास

1.3.2.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास

1.3.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

1.3.2.4 भारत में स्वदेशी और स्वशासन की मांग का पहला चरण

1.3.2.5 लॉर्ड लिटन का दमनकारी तथा लॉर्ड रिपन का उदार शासन

1.4 कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

1.4.1 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन

1.4.1.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन

1.4.1.2 बॉम्बे एसोसियेशन

1.4.1.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन

1.4.1.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन

1.4.1.5 हिन्दू मेला

1.4.1.6 पूना सार्वजनिक सभा

1.4.1.7 इण्डियन लीग

1.4.1.8 इण्डियन एसोसियेशन

1.4.1.9 महाजन सभा

1.4.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

1.4.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा उसका प्रथम अधिवेशन

1.4.2.1 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां

1.4.2.2 भारत में एक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल की आवश्यकता

1.4.2.3 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आदि काल से ही हमारे भारत में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। चारो वेदों में, पुराणों तथा महाकाव्यों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको चन्द बरदाई और अमीर खुसरो की रचनाओं में तथा अकबर की प्रशासनिक, आर्थिक व धार्मिक नीति में मिलते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए भारतीय नवजागरण में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना का भी विकास हुआ था। राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का अग्रदूत कह सकते हैं। दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, दिनशा वाचा, रमेश चन्द्र दत्त आदि ने आर्थिक राष्ट्रवाद का विकास किया उन्होंने ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति की आलोचना की तथा भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास करने का आवाहन किया।

शहरी मध्यवर्गीय भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने-अपने राजनीतिक संगठन बनाए। धीरे-धीरे भारत में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा और 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः

- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।

- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्श कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में सरकार से संगभेदी व जातिभेदी नीति का परित्याग करने की अपील किए जाने के अतिरिक्त भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रथम चरण के रूप में भारतीयों को भारतीय प्रशासन, विधि-निर्माण तथा आर्थिक नीति-निर्धारण में हिस्सेदारी दिए जाने की मांग रखी गई।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको आधुनिक भारत में राजनीतिक चेतना के उद्भव तथा उसके विकास के प्रथम चरण से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- प्राचीन काल तथा मध्य काल में भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास।
2- उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में राजनीतिक चेतना का विकास।
3- भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय।
4- भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों की स्थापना।
5- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना।
6- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन रखी गई मांगे।

1.3 भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण

1.3.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

ब्रिटिश शासकों का यह दावा था कि उन्होंने ही भारतीयों को राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम का पाठ पढ़ाया है। इस दावे में कुछ न कुछ सत्यता अवश्य थी परन्तु यह कहना सर्वथा अनुचित होगा कि भारतीयों में ब्रिटिश शासन से पूर्व राष्ट्रीयता और स्वदेशी की भावना का नितान्त अभाव था। प्राचीन काल में भारतीयो में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। वेदों में राष्ट्र की रक्षा और सुरक्षा, एकता और संगठन पर अनेकों बार प्रकाश डाला गया है। इनमें अपने नगरों, नदियों, वनों और पर्वतों के प्रति अपार प्रेम दर्शाया गया है और अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। 'स्वराज्य' शब्द वैदिक साहित्य की ही देन है। ऋग्वेद (ऋग्वेद 8/45/21 तथा (ऋग्वेद 5/66/6) में कहा गया है कि-

स्वराज्य के योग-क्षेम के लिए सतत जागरूक रहना चाहिए। स्वराज्य के विस्तार एवं प्रजातान्त्रिक शासन-हेतु हम सभी देशवासी प्रयत्नशील रहें।

ऋग्वेद में अपने राज्य को स्वराज्य बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया गया है -

यतेमहि स्वराज्ये

(हम स्वराज्य के लिए सतत प्रयत्न करते रहें।)

ऋग्वेद की ही भाँति अथर्ववेद में भी देशप्रेम की भावना अनेक स्थानों पर मुखरित हुई है। अनेकता में एकता को बनाए हुए देशवासियों को राष्ट्रोत्थान में सतत संलग्न रहना चाहिए -

जिस प्रकार एक घर के लोग भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन करके तथा अपनी-अपनी व्यक्तिगत धार्मिक आस्थाओं वाले होकर भी अपने घर की मिलजुल कर देखभाल करते हैं तथा उसे सुख-सुविधा सम्पन्न बनाकर स्वयं भी सुखी होते हैं, ठीक उसी प्रकार भारतवासियों को भी अपने भाव-विषयक एवं धर्म-विषयक भेदभाव की उपेक्षा करके अपने समग्र राष्ट्र का कल्याण आत्मीयतापूर्ण समवेत भावना से करना चाहिए।

ऋग्वेद के सूक्त 10/25 तथा अथर्ववेद के सूक्त 4/30 में समग्र भारत राष्ट्र की एक राष्ट्रदेवी के रूप में परिकल्पना की गई है। ऋषियों का दृष्टिकोण है कि यह राष्ट्रदेवी राष्ट्र के चारो ही वर्णों में ओतप्रोत रहती है; सौहार्द, सद्व्रत, शौर्य, ज्ञान तथा आरोग्य का विस्तार करती है;राष्ट्र की आर्थिक दशा में सन्तुलन करती है; विविध ज्ञान की वृद्धि कराती है; अनेक प्रसंगों में स्थिर प्रतिष्ठा पाती है। जो राष्ट्र इस राष्ट्रदेवी की उपेक्षा करते हैं, वे विनष्ट हो जाते हैं।

हमारे पुराण भारत महिमा से भरे हुए हैं। इनमें भारतवासियों को एकसूत्र में बंधने की प्रेरणा दी गई है। भारतभूमि को कर्मभूमि कहा गया है; जहाँ जन्म पाने के लिए देवताओं को भी तरसता हुआ बताया गया है। भारत के पर्वतों, वनों, समुद्रों, नदियों, सरोवरों, नगरों तथा तीर्थों का गर्व के साथ वर्णन किया गया है।

विष्णु पुराण में कहा गया है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरुत्वात्।।

(इस देश की महिमा का देवता भी गान करते हैं। उनकी दृष्टि में वे लोग धन्य हैं, कृतार्थ हैं और कृतकृत्य हैं जो इस पवित्र भारतभूमि में जन्म पाते हैं। देवत्व की समाप्ति पर यहाँ मानव-जाति में जन्म पाने के लिए देवगण भी लालसा करते हैं।)

हमारे महाकाव्यों - रामायण और महाभारत में, भी स्वदेश-प्रेम और स्वदेशी की भावना मुखरित हुई है। रामायण में कहा गया है -

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

महाभारत के भीष्मपर्व में स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्युगति को प्राप्त करने को परधर्म का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करने से श्रेष्ठ बताया गया है -

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

कालिदास की कृतियों में भारत और भारतीयता के प्रति असीम अनुराग है और अपरिमित भक्ति है। उनकी रचनाओं में भारतीय इतिहास के गौरवशाली अध्याय का चित्रण मिलता है। उनका हिमालय वर्णन भारतीय साहित्य की अनुपम धरोहर है।

1.3.1.2 मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

मध्यकाल में हमारे देश में प्रान्तीयता तथा क्षेत्रवाद के भाव ने हमारी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। देशप्रेम अब अपने राज्य अथवा अपने क्षेत्र तक सिमट कर रह गया। भारत पर मुस्लिम

आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिन्दुओं की दृष्टि में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ उठाया जाने वाला हर प्रयास देशभक्ति माना जाने लगा। चन्दबरदाई की रचना पृथ्वीराज रासो में बार-बार यह दर्शाया गया है कि राजपूत जातीय अभिमान की रक्षा के लिए अपने प्राणों की परवाह नहीं करते करते थे। पृथ्वीराज रासो के ही काल की रचना आल्हाखण्ड में वीरों का बखान करते हुए कहा गया है कि जो वीर युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं उन्हें सीधे मोक्ष मिलता है। हमारे देश की वीरांगनाएँ सदैव ही वीर पति की कामना करती थीं।

मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको अमीर खुसरो की रचनाओं में मिलते हैं । अमीर खुसरो तुर्क थे परन्तु उनका जन्म हिन्दुस्तान में हुआ था । उन्हें अपनी जन्मभूमि ' हिन्द ' से अत्यन्त प्रेम था । उन्हें अपनी भारतीयता पर गर्व था। नूहे सिपहर में वह लिखते हैं -

हिन्द मेरी जन्मभूमि है। यह मेरा वतन है। अपने वतन से प्यार करना हर एक के लिए उसके ईमान का हिस्सा है। हिन्द जन्नत की तरह है। इसकी मिट्टी उपजाऊ है और इसकी आबोहवा दिलकश है।

महाराष्ट्र में वाराकरी पंथ के सन्तों ने महाराष्ट्र धर्म का विकास किया। उन्होंने धर्म, संस्कृति और भाषा को आधार बनाकर मराठा जाति को एकसूत्र में बांधने का सफल प्रयास किया। अकबर के अधीन भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के सफल प्रयास हुए । अकबर ने भारत को प्रशासनिक, राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से एकसूत्र में बांधा और दीन-ए-इलाही अथवा तौहीद-ए-इलाही के माध्यम से उसने भारतीयों को भावनात्मक रूप से बांधने का प्रयास किया। साहित्य, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला, मुद्रा प्रणाली, खान-पान, वेशभूषा, शिष्टाचार, भाषा आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय के प्रयास हुए। अमीर खुसरो की ही भाँति अकबर को भी अपनी भारतीयता पर गर्व था। अकबर के नवरत्न अबुल फ़ज़्ल के विचार भी स्वदेश प्रेम की भावना से ओतप्रोत थे।

1.3.2 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण

1.3.2.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में ही सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक चेतना का विकास प्रारम्भ हो गया था। सरकार की रंगभेदी, जातिभेदी व आर्थिक शोषण नीति की निर्भीक आलोचना करने वाले भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। भारतीय नवजागरण ने धार्मिक,सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति की अलख जगाई। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि ने अंग्रेज़ों के जातीय श्रेष्ठता के दावे को एक सिरे से नकार दिया। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

1.3.2.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास

सन् 1857 में ब्रिटिश हुकूमत का तख्ता पलटने के लिए भारत में व्यापक स्तर पर विद्रोह हुआ। फिरंगी शासन से देश को मुक्त कराने के लिए बादशाह, राजे-महाराजे, नवाब, जागीरदार, सैनिक, किसान और मज़दूर एकजुट हुए। 1857 के विद्रोह का विस्तार समस्त भारत में नहीं हो सका

और न ही इसमें उत्तर भारत के एक सीमित क्षेत्र को छोड़कर आम जनता की भागीदारी हुई किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस काल में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई और अपने धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर आघात करने वाले के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए लाखों लोग एकजुट हुए। अंग्रेज़ों ने इस विद्रोह को कुचल दिया और इसे मात्र एक सैनिक विद्रोह का जामा पहनाने का प्रचार किया। प्रबुद्ध भारतीय प्रायः इस विद्रोह से विलग रहे किन्तु परवर्ती काल में उनमें से अनेक ने इस विद्रोह को भारतीय इतिहास का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम माना। 1857 के विद्रोह से भारतीय युवाओं ने औपनिवेशिक शासन के अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा प्राप्त की। 1857 के विद्रोह में सादिकुल अख़बार,देहली उर्दू अख़बार, दूरबीन तथा सुल्तानुल अख़बार ने विद्रोह की भावना का प्रचार करने का साहसिक अभियान छेड़ा। बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के पौत्र बेदार बख़्त के संचालन में प्रकाशित उर्दू अखबार पयामे आज़ादी में अज़ीमुल्ला खां रचित बाग़ी सैनिकों का क़ौमी गीत प्रकाशित हुआ था। इस कौमी तराने में भारत की महिमा का गुणगान किया गया है और भारत में ब्रिटिश शासकों की आर्थिक दोहन की निन्दा की गई है और आज़ादी के झण्डे के तले सभी धर्मावलम्बी भारतवासियों को एकजुट होकर भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए आगे बढ़ने की अपील की गई है-

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,
पाक वतन है क़ौम का, जन्नत से भी प्यारा।
ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानी से, रौशन है जग सारा।
कितना क़दीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,
करती है ज़रखेज़ जिसे, गंग-जमन की धारा।
ऊपर बर्फ़ीला पर्वत, पहरेदार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा।
इसकी खानें उगल रहीं, सोना, हीरा, पारा,
इसकी शान-शौकत का, दुनिया में जयकारा।
आया फिरंगी दूर से, ऐसा मन्तर मारा,
लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने है तुमको, अहले-वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की ज़न्जीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दु-मुसल्मां, सिक्ख हमारा, भाई प्यारा-प्यारा,
यह है आज़ादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।।

1.3.2.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। 1857 के विद्रोह से लेकर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आन्दोलन के हर चरण में भारतीय पत्रकारिता ने राजनीतिक चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। आधुनिक भारतीय पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय की सम्बाद

कौमुदी तथा अक्षय कुमार दत्त की तत्व बोधिनी पत्रिका, लोकहितवादी के पत्र हितवादी में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की गई थी। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र बैंगाल हरकारा के 1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए 1830 की फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई थी। गिरीश चन्द्र घोष के पत्र हिन्दू पैट्रिएट (सम्पादक हरीश चन्द्र मुकर्जी) में 1861 में दीन बन्धु मित्र का नाटक नील दर्पण प्रकाशित किया। बाद में इस पत्र पर ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का नियन्त्रण हो गया। इस पत्र ने सरकार की ज़्यादतियों की कटु आलोचना की और भारतीयों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाने की मांग की। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का एक अन्य पत्र सोमप्रकाश भी एक राष्ट्रवादी पत्र था। इस पत्र ने किसानो को उनके अधिकार दिलाने के लिए अभियान छेड़ा था। मोती लाल घोष के पत्र अमृत बाज़ार पत्रिका को सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करने के कारण उसके कोप का भाजन होना पड़ा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पत्र कवि वचन सुधा में तन-मन-धन से स्वदेशी अपनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। कवि वचन सुधा के नवम्बर, 1872 के अंक में भारतेन्दु ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतीय वाणिज्य का पुनरोद्धार करने के लिए भारतवासियों को व्यापक स्तर पर तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता थी। 23 मार्च, 1874 की कविवचन सुधा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अध्यक्षता में स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में बनारस वासियों द्वारा अंगीकार किया गया एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित हुआ था-

हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान और नित्य सत्य-परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा पहिले मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे।

1873 में एक बंगला त्रैमासिक मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन में भोलानाथ चन्द्र ने भारत में बिटिश आर्थिक नीति पर कठोर प्रहार किए। एम0 जी0 रानाडे के मराठी पत्र ज्ञान प्रकाश तथा इन्दु प्रकाश दोनों ही पत्रों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया जाता था।

लोकमान्य तिलक ने मराठी भाषा के पत्र केसरी तथा अंग्रेज़ी पत्र मराठा में औपनिवेशिक शासन के शोषक एवं दमनकारी स्वरूप का निर्भीक चित्रण किया। लोकमान्य ने मराठा में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा समाज सुधार के नाम पर भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोध किया। उन्होंने 1891 के 'एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल' का इसीलिए विरोध किया। हिन्दू, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, ज्ञान प्रकाश, अम्बाला गज़ट, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, नजमुल अखबार, भारत जीवन आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था। भारतीय पत्रों में अब राजनीतिक दलों के गठन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा था। अपने पत्र बैंगाली के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा -

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नहीं तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

1.3.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

दादा भाई नौरोजी भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक थे। उन्होंने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की निरन्तर बढ़ती हुई दरिद्रता पर प्रकाश डाला वहीं उन्होंने भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास करने का आवाहन किया। उनके ग्रंथ पॉवर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया को भारतीय आर्थिक राष्ट्रवाद की आधार पुस्तक कहा जा सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य सभी नेताओं ने तथा भारतीय समाचार पत्रों ने भी सरकार के हर शोषक पहलू को उभारा तथा भारत के आर्थिक पुनरुद्धार हेतु सृजनात्मक सुझाव दिए। भारत में स्वदेशी की भावना जागृत करने में और आधुनिक उद्योग का विकास तथा कुटीर उद्योग का पुनरुत्थान करने में आर्थिक राष्ट्रवाद का अभूतपूर्व योगदान रहा। उर्दू के पहले प्रगतिशील शायर अल्ताफ़ हुसेन हाली ने भारत के आर्थिक पुनरुत्थान के लिए भारतीय उद्योग और वाणिज्य को आधुनिक तकनीक से विकसित किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। 1874 में प्रकाशित अपनी नज़्म हुब्बे वतन में उन्होंने भारतीयों को इस बात पर फटकार लगाई कि वे अब भी अपने मिथ्या जातीय गौरव की शान बघारने से बाज़ नहीं आ रहे हैं और इस बात को अनदेखा कर रहे हैं कि वे गुलामी और गरीबी में अपने दिन काट रहे हैं -

इज़्ज़तो-क़ौम चाहते हो अगर, जाके फैलाओ उनमें इल्मो-हुनर,
जात का फ़ख्र और नसल का गुरूर, उठ गए जहाँ से ये दस्तूर।

क़ौम की इज़्ज़त अब हुनर से है, इल्म से याकि सीमोज़र से है,
एक दिन में वो दौर आएगा, बे-हुनर भीख तक न पाएगा।।

दयानन्द सरस्वती ने भारत के आर्थिक पुनरुत्थान को महत्व दिया था और इसके लिए स्वदेशी का प्रचार करना उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया था। अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने यूरोपियनों के स्वदेश प्रेम और उनके अध्यवसाय की प्रशंसा की थी -

यूरोपियन अपनी स्वजाति की उन्नति के लिए तन-मन-धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं।

दीनबन्धु मित्र के नाटक नील दर्पण ने नील के बागानों के गोरे मालिकों के अत्याचारों का मार्मिक चित्रण कर देशवासियों को अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा दी। मनमोहन बोस के उपन्यास बंगाधिप पराजय में यह दर्शाया गया कि पराधीनता का परिणाम प्रजा की घोर दरिद्रता होता है। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों दुगेशनन्दिनी तथा आनन्दमठ में अन्यायी का निर्भीक होकर प्रतिकार करने का संदेश दिया गया था। 'वन्देमातरम्' गीत आनन्दमठ उपन्यास का ही अंग है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में भारत दुर्दशा तथा अंधेर नगरी में कुशासन की विभीषिकाओं पर प्रकाश डाला।

1.3.2.4 भारत में स्वदेशी और स्वशासन की मांग का पहला चरण

1867 में लन्दन में डब्लू0 सी0 बनर्जी ने 'भारत की प्रतिनिधि तथा उत्तरदायी सरकार' विषय पर दिए गए अपने भाषण में भारत में एक प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट की स्थापना का सुझाव दिया। 1873 में आनन्दमोहन बोस ने ब्राइटन में दिए गए भाषण में क्रमिक चरणों में भारत में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का प्रस्ताव रखा। सन् 1874 में कृष्णदास पाल ने सन् 1874 में हिन्दू पैट्रिएट में प्रकाशित अपने एक लेख में भारत में होमरूल की स्थापना की मांग रखी। दयानन्द सरस्वती ने स्वदेशी और स्वशासन को आत्मनिर्भरता तथा आत्म-गौरव से जोड़ कर देखा। उन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार करने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी लिपि को देश-व्यापी लिपि के रूप में स्थापित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

1.3.2.5 लॉर्ड लिटन का दमनकारी तथा लॉर्ड रिपन का उदार शासन

1877 में महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की साम्राज्ञी का पद ग्रहण करने की खुशी में दिल्ली दरबार का आयोजन किया गया। लॉर्ड लिटन के शासनकाल में दुर्भिक्ष की स्थिति में भी आंग्ल-अफ़गान युद्ध में अपव्यय तथा समारोहों का आयोजन करने की प्रवृत्ति भारतीयों को सहन नहीं हुई। अगले वर्ष लॉर्ड लिटन के दमनकारी -'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट', 'इण्डियन आर्म्स एक्ट' तथा 'लाइसेन्स एक्ट' ने स्थिति और भी विस्फोटक कर दी और भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया।

गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880-84) में अनेक सुधार किए गए तथा भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार दिए गए। 1883 में भारतीय न्यायधीशों को गोरों का मुकदमा सुनने तथा उन्हें दण्ड देने के अधिकार विषयक इल्बर्ट बिल न्यायपालिका में रंगभेदी व्यवस्था को समाप्त करने के उद्देश्य से रखा गया था किन्तु इसका एंग्लो इण्डियन समुदाय तथा प्रेस ने प्रबल विरोध किया। भारतीयों ने इस बिल के समर्थन में अपना आन्दोलन किया। इस विषय में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर एंग्लो इण्डियन समुदाय पर आक्षेप करने पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें सज़ा देकर कारावास भेजा गया। जेल से रिहा होने के बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जी देश के सबसे लोकप्रिय राजनीतिक नेता के रूप में वह प्रतिष्ठित हुए।

इल्बर्ट बिल अपने मूल रूप में पारित नहीं हो सका। एंग्लो-इण्डियन समुदाय की मांगों को देखते हुए सरकार ने इसमें किंचित परिवर्तन किए। इससे भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली।

1.4 कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

1.4.1 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन

1.4.1.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन

'लैण्ड होल्डर्स सोसायटी' तथा 'बैंगाल ब्रिटिश इण्डियन सोसायटी' ने संगठित होकर भारतीय हितों की रक्षार्थ संघर्ष करने का निश्चय किया। 1853 में चार्टर एक्ट द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत पर अधिकार के नवीनीकरण से पूर्व इन दोनों संगठनों ने एक साथ मिलकर 1851 में

'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियशन' की स्थापना की। इस एसोसियेशन का उद्देश्य चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व देश की कानून व्यवस्था तथा नागरिक प्रशासन में विद्यमान दोषों को दूर करना तथा भारतवासियों के कल्याण को प्रोत्साहित करना था। इसके लिए ब्रिटिश भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश संसद में अपनी बात रखना भी संगठन के कार्यक्रम में शामिल था। इस संगठन का स्वरूप अखिल भारतीय था। 1853 में चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व ही इस संगठन ने कार्यपालिका तथा विधायिका को पृथक करने तथा विधान परिषदों में भारतीय सदस्यों को शामिल किए जाने की मांग की थी।

1.4.1.2 बॉम्बे एसोसियेशन

अगस्त, 1852 में बम्बई के नागरिकों ने 'बॉम्बे एसोसियेशन' की स्थापना की। इस सभा की अध्यक्षता जगन्नाथ शंकरशेथ ने की।

इस संगठन के एक प्रस्ताव में कहा गया -

यह संगठन आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की सरकार को विद्यमान खराबियों के उन्मूलन तथा भविष्य में नुक्सान पहुंचाने वाले निर्णयों पर रोक लगाए जाने के लिए आगाह करता रहेगा।

1.4.1.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन

कलकत्ता के 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' की मद्रास में स्थापित की गई शाखा बाद में 'मैड्रास नेटिव एसोसियेशन' के नाम से फ़रवरी, 1852 में स्थापित हुई। इस संगठन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व उसके प्रशासन में सुधार के सुझाव हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को एक याचिका भेजी।

1.4.1.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन

लन्दन में 1866 में दादा भाई नौरोजी ने ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की थी। भारत के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाएं स्थापित की गईं।

1.4.1.5 हिन्दू मेला

राजनारायण बोस के 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' से प्रेरणा लेकर 1867 में नबगोपाल मित्र ने 'हिन्दू मेला' की स्थापना की। इसका उद्देश्य देश की प्रगति हेतु भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य निर्माण आदि का विकास करना था। मेले द्वारा भारतीय उत्पादों की प्रदर्शनी का नियमित आयोजन सराहनीय प्रयास था।

1.4.1.6 पूना सार्वजनिक सभा

1870 में पूना में 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना का उद्देश्य जनता का प्रतिनिधित्व कर उसकी आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं को सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना था। इस सभा के मार्गदर्शक व संस्थापक एम0 जी0 रानाडे थे। इसके द्वारा महारानी विक्टोरिया को एक याचिका प्रेषित की गई जिसमें भारतीयों को वही राजनीतिक अधिकार दिए जाने की बात कही गई जो कि

ब्रिटिश नागरिकों को प्राप्त थे। 1875 में सभा द्वारा ब्रिटिश संसद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिए जाने रखी गई।

1.4.1.7 इण्डियन लीग

बंगाल के प्रगतिषील राजनीतिक चिन्तकों ने 1875 में 'इण्डियन लीग' की स्थापना की। इसका उद्देश्य जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना था।

1.4.1.8 इण्डियन एसोसियेशन

1876 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने आनन्दमोहन बोस, शिवनाथ शास्त्री आदि के साथ मिलकर 'इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना की। कृष्णमोहन बनर्जी इसके प्रथम अध्यक्ष थे। इसके मुख्य उद्देश्य थे -

- देश में जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली एक संस्था का निर्माण करना।
- सामान्य राजनीतिक हितों के आधार पर भारतीय जातियों को एकबद्ध करना।
- हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव को बढ़ावा देना।
- राजनीतिक आन्दोलनों में जनता की भागीदारी को बढ़ाना तथा उसमें राजनीतिक जागृति का विकास करना।
- युवाओं को लोकतान्त्रिक प्रणाली की महत्ता से अवगत कराना।

इसके द्वारा आयोजित जनसभाओं में प्रेस की स्वतन्त्रता, ज्यूरी प्रणाली को लागू करना, जातिभेद तथा रंगभेद की भावना का उन्मूलन, नमक कर में कमी, रेलों में थर्ड क्लास के यात्रियों को अधिक सुविधाएं दिया जाना, उच्च प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की अधिक हिस्सेदारी आदि विषयों को उठाया जाता था। 1877 में इस संगठन ने आई0 सी0 एस0 परीक्षा में अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु 21 वर्ष से घटा कर 19 वर्ष किए जाने के विरोध में देश-व्यापी आन्दोलन किया। इस संगठन ने लॉर्ड लिटन द्वारा लागू किए गए 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट', 'इण्डियन आर्म्स एक्ट' तथा 'लाइसेन्स एक्ट' जैसे जातिभेदी व रंगभेदी कानूनों का प्रबल विरोध किया। इस संगठन के प्रयासों से 'इण्डियन स्टेट्यूटरी सर्विस' की स्थापना हुई जिसके कारण मझले स्तर तक के प्रशासनिक पदों पर भारतीयों की नियुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया। 1879 में आयोजित एक जन-सभा में 'इण्डियन एसोसियेशन' ने अफ़गान युद्ध पर हो रहे खर्च से भारत की अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव की चर्चा की तथा ब्रिरटिश कपड़ा मिल मालिकों को लाभ पहुंचाने व भारतीय कपड़ा मिलों के विकास में बाधा पहुंचाने के उद्देश्य से विदेशी कपड़े पर आयात कर हटाने का विरोध किया। 1879 से इस संगठन ने राष्ट्रीय स्तर पर स्वशासन की मांग करना भी प्रारम्भ कर दिया। इस संगठन ने 1879 के विदेशी कपड़ों पर लगाए जाने वाले आयात कर को हटाए जाने का विरोध किया।

1.4.1.9 महाजन सभा

मद्रास में जन-जागृति हेतु 1878 में 'हिन्दू' की स्थापना हुई। इसके समर्थकों ने 1884 में एक राजनीतिक संगठन 'महाजन सभा' का गठन किया। दिसम्बर, 1884 में इस संगठन ने मद्रास

प्रेसीडेन्सी के बड़े शहरों के प्रतिनिधियों ने विधान परिषदों में सुधार, न्यायपालिका को राजस्व सम्बन्धी दायित्व से मुक्ति दिलाने तथा नागरिक एवं सैन्य प्रशासन में कमी किए जाने पर चर्चा की और इस विषय में सरकार को एक स्मरणपत्र दिया।

1.4.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

अपने पत्र बैंगाली के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ़्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा -

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नहीं तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

1883 में 28 से 30 दिसम्बर तक कलकत्ता में नेशनल कॉन्फ़्रेन्स की प्रथम बैठक हुई। इसमें उठाए गए मुद्दों में मुख्य थे - प्रतिनिधि सभाएं, सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा, न्यायपालिका का कार्यपालिका से अलगाव, फ़ौजदारी न्याय प्रशासन तथा प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की नियुक्ति। दिसम्बर, 1885 में कलकत्ते में नेशनल कॉन्फ़्रेन्स की दूसरी बैठक हुई जिसमें विधान परिषदों में सुधार किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

1.4.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा उसका प्रथम अधिवेशन

1.4.2.1 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। लॉर्ड हेस्टिंग्स, एलफ़िन्सटन, टॉमस मुनरो, लॉर्ड मैकॉले और मैटकाफ़ जैसे अधिकारियों ने राजनीतिक एवं संवैधानिक सुधारों के लिए भारतीयों को शासन में हिस्सेदारी दिए जाने की सिफ़ारिश की थी। इण्डियन सिविल सर्विस के सर ए0 ओ0 ह्यूम का मानना था कि भारत का शासन, शासक और प्रजा दोनों के हितों को ध्यान में रखकर चलाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। लॉर्ड लिटन के बदनाम शासन में भारतीय असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। इस स्थिति में एक विप्लव की प्रबल सम्भावना बन रही थी।

1.4.2.2 भारत में एक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल की आवश्यकता

सर ए0 ओ0 ह्यूम की दृष्टि में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी जन-विद्रोह के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन जिसके तीन लक्ष्य हों-

पहला, भारत के विभिन्न क्षेत्रों तथा जनसमूहों का सम्मिश्रण।

दूसरा, राष्ट्र का आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उत्थान।

तीसरा, अन्यायपूर्ण व हानिकारक तत्वों को दूर कर भारत तथा इंग्लैण्ड के मध्य सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना।

ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। ए0 ओ0 ह्यूम ब्रिटिश भारतीय शासन के लिए एक सेफ्टी वॉल्व के रूप में कांग्रेस की स्थापना करना चाहते थे। उन्हें आशा थी कि प्रबुद्ध भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस की मांगों और उसके सृजनात्मक सुझावों को मानकर सरकार भारतीय प्रजा की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को एक सीमा तक पूरा कर उनके किसी भी सम्भावित आक्रोश पर नियन्त्रण लगा सकेगी और भारत पर रूस के हमले की स्थिति में रूसी आक्रमणकारी सेना के विरुद्ध भारतीयों के सहयोग की अपेक्षा कर सकेगी। ग्रेट ब्रिटेन के उदार राजनीतिज्ञ, वहां की उदारवादी दल की सरकार और तत्कालीन भारतीय प्रशासकों ने भी ए0 ओ0 ह्यूम के प्रस्तावों का स्वागत किया। बम्बई में दिसम्बर, 1885 में सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

1.4.2.3 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज परिसर में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। ए0 ओ0 ह्यूम इसके महासचिव थे और इसमें भाग लेने वाले सदस्यों की कुल संख्या 72 थी जिनमें कि अधिकांश बॉम्बे तथा मैड्रास प्रेसीडेन्सी के शहरी मध्यवर्गीय हिन्दू थे। इसके विदेशी सदस्यों में वैडरबर्न और जस्टिस जॉन जॉर्डिन सम्मिलित थे। इस अधिवेशन में सदस्यों ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की और ब्रिटिश भारतीय सरकार की ओर से भी इसे संरक्षण प्रदान किया गया।

- कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः
- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्श कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।
- इस अधिवेशन में कुल 9 प्रस्ताव पारित किए गए जिनमें कि मुख्य थे -
- भारतीय प्रशासन की कार्यप्रणाली की जांच करने के लिए रॉयल कमीशन की नियुक्ति की जाए।
- भारत सचिव की इण्डियन काउंसिल भंग की जाए।
- पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध और पंजाब में विधान परिषदों का गठन किया जाए।
- उच्चतम तथा स्थानीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों को पर्याप्त संख्या में प्रवेश दिया जाए तथा उन्हें बजट पर बहस करने का अधिकार दिया जाए।

- हाउस ऑफ़ कॉमन्स में एक स्टैण्डिंग काउंसिल का गठन किया जाए जो कि विधान परिषदों में बहुमत से उठाए गए विरोधों पर विचार करे।
- सैनिक व्यय में कमी की जाए तथा इसका बोझ भारत और इंग्लैण्ड मिलकर उठाएं।
- इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों में ही एकसाथ इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन किया जाए तथा अभ्यार्थियों की आयु की अधिकतम सीमा बढ़ाई जाए।

अभ्यास प्रश्न

1. वेदों में व्यक्त राष्ट्रीयता की भावना पर प्रकाश डालिए।
2. दादा भाई नौरोजी को भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का जनक क्यों कहा जाता है?
3. नेशनल कॉन्फ्रेन्स की प्रमुख मांगे क्या थीं?

1.5 सारांश

आदि काल से ही हमारे भारत में देशदेश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। चारो वेदों में, पुराणों तथा महाकाव्यों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको चन्द बरदाई और अमीर खुसरो की रचनाओं में महाराष्ट्र के वाराकरी पंथ के सन्तों के उपदेशों में तथा अकबर की प्रशासनिक, आर्थिक व धार्मिक नीति में मिलते हैं।

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। 1857 के विद्रोह में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई। भारतीय नवजागरण में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना भी विकास हुआ। आर्थिक राष्ट्रवाद के अन्तर्गत दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, दिनशा वाचा, रमेश चन्द्र दत्त, केशब चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अल्ताफ़ हुसेन हाली आदि ने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की दुर्दशा पर प्रकाश डाला तो दूसरी ओर उन्होंने भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयास करने का आवाहन किया। शहरी मध्यवर्गीय भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने-अपने राजनीतिक संगठन बनाए। धीरे-धीरे भारत में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा।

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों तथा अनेक भारतीय भाषाओं रचित देशभक्तिपूर्ण साहित्यिक रचनाओं ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सम्बाद कौमुदी, तत्व बोधिनी पत्रिका, हितवादी, बैंगाल हरकारा, पयामें आज़ादी, हिन्दू पैट्रिएट, सोमप्रकाश, कवि वचन सुधा, मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन, ज्ञान प्रकाश, इन्दु प्रकाश, केसरी तथा बैंगाली में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया गया।

लॉर्ड लिटन की दमनकारी एवं शोषक नीतियों के कारण भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880-84) में भारतीयों को

पहले से अधिक अधिकार दिए गए किन्तु इल्बर्ट बिल विवाद से भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठनों में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन, बॉम्बे एसोसियेशन, मैड्रास नेटिव एसोसियेशन, ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन, हिन्दू मेला, पूना सार्वजनिक सभा, इण्डियन लीग, इण्डियन एसोसियेशन, महाजन सभा तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की नेशनल कान्फ्रेन्स प्रमुख थे।

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। इण्डियन सिविल सर्विस के अवकाश प्राप्त अधिकारी सर ए0 ओ0 ह्यूम का मानना था कि सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। उनकी दृष्टि में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी जन-विद्रोह के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन। ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। ग्रेट ब्रिटेन के उदार राजनीतिज्ञ, वहां की उदारवादी दल की सरकार और तत्कालीन भारतीय प्रशासकों ने भी ए0 ओ0 ह्यूम के प्रस्तावों का स्वागत किया। बम्बई में दिसम्बर, 1885 में सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थे:

- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्ष कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में सरकार से संगभेदी व जातिभेदी नीति का परित्याग करने की अपील किए जाने के अतिरिक्त भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रथम चरण के रूप में भारतीयों को भारतीय प्रशासन, विधि-निर्माण तथा आर्थिक नीति-निर्धारण में हिस्सेदारी दिए जाने की मांग रखी गई।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

आई0 सी0 एस0 : इण्डियन सिविल सर्विस (भारतीय प्रशासनिक सेवा)
वर्नाक्युलरः भारतीय भाषाएं।
पाकः पवित्र
मिल्कियतः सम्पत्ति

रूहानीः आत्मिक प्रकाश
कदीमः पुरातन
नईमः नव्योपहार
ज़रखेज़ः सिंचित
साहिलः किनारा
अहलेवतनः देशवासी
आज के मिती तकः आज के दिन तक
इज़्ज़तो-कौमः देशवासियों का सम्मान
इल्मो-हुनरः ज्ञान व दक्षता
ज़ात का फ़ख्र और नसल का गुरूरः अपनी जाति व अपने वंश का घमण्ड
सीमोज़रः सोना-चांदी

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना
2. देखिए 1.3.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय
3. देखिए 1.4.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, दो भागों मे, बम्बई, 1965
ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984
चन्द्रा, बिपन - दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया
नई दिल्ली, 1965
बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915
नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

नौरोजी, दादाभाई - पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1902
दत्त, रमेश चन्द्र - दि इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1965
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फार फ्रीडम, बम्बई, 1969

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व भारत में स्थापित राजनीतिक संगठनों की भूमिका पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के उद्देश्यों और उसमें पारित प्रस्तावों की समीक्षा कीजिए।

इकाई दो

प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें तथा उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

2.1 प्रस्तावना

2.2. इकाई के प्राप्ति उद्देश्य

2..3 प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें

2..3.1 प्रथम चरण में कांग्रेस का संगठन

2..3.2 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

2.3.3 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

2..3.4 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

2.3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

2.3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

2.3.7 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

2.4 उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

2.4.1 कांग्रेस के प्रथम चरण की सीमाएं

2.4.2 सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में बदलाव लाने में कांग्रेस की असफलता

2.4.3 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपलब्धियां

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. 8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के प्रारम्भिक राजनीतिक संगठनों के उदय से लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और उसके प्रथम अधिवेशन के उद्देश्य तथा उसमें पारित प्रस्तावों की चर्चा कर चुके हैं। कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम 20 वर्ष की अवधि को नरमपंथियों के राजनीतिक प्रभुत्व का काल माना जाता है। नरमपंथियों ने आर्थिक राष्ट्रवाद का पोषण किया और सरकार की शोषक एवं दमनकारी नीतियों की आलोचना करते हुए उनमें सुधार लाने हेतु सृजनात्मक सुझाव रखे। नरमपंथियों ने भारत और ब्रिटेन के हितों को परस्पर विरोधी होने के स्थान पर एक दूसरे का सहयोगी माना। उनको विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार 1858 के महारानी के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों का निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन करेगी। उनका विचार था कि सरकार की नीतियों में जो भी दोष हैं उनके लिए स्थानीय सरकार तथा नौकरशाही ज़िम्मेदार है न कि गृह सरकार, ब्रिटिश पार्लियामेन्ट और न ही ब्रिटिश जनता। इसलिए उन तक अपनी बात पहुंचाने के लिए इस काल में सक्रिय राजनीतिक विरोध के स्थान पर कानून की सीमाओं का पालन करते हुए अपनी शिकायतें और मांगे रखी गईं। उनके द्वारा प्रायः अनुनय-विनय के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए याचना करने की नीति को अपनाया गया। औपनिवेशिक सरकार कांग्रेस को मुट्ठी भर

शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय हिन्दुओं का राजनीतिक दल मानकर उसकी मांगों पर ध्यान दिए बगैर अपनी शोषक, दमनकारी, जातिभेदी, रंगभेदी व 'फूट डालो और शासन करो' की नीतियों का पूर्ववत पालन करती रही। कांग्रेस ने भारत के सभी धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक वर्गों का हितैषी होने का दावा किया किन्तु इसे शहरी मध्यवर्गीय हिन्दुओं का राजनीतिक दल मानकर मुसलमान आमतौर पर इससे अलग रहे। सरकार के प्रति अनावश्यक सहयोग व विनम्रता का रुख अपनाने के लिए कांग्रेस के नरमपंथी नेताओं को उग्रवादियों की कटु आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार में कांग्रेस के इस प्रथम चरण महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

2.2. इकाई के प्राप्ति उद्देश्य

इस इकाई में कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसके कार्यों का विवरण तथा उनकी समीक्षा भी की जाएगी तथा उसकी कमियों तथा उसकी उपलब्धियों का आकलन भी किया जाएगा। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम बीस वर्षों में किए गए प्रमुख कार्य तथा उसकी नीतियां।

इस अवधि में सरकार के कार्य तथा उसकी नीतियां और कांग्रेस के प्रति उसका रवैया अधिकांश मुसलमानों का स्वयं को कांग्रेस की गतिविधियों से अलग रखना कांग्रेस के भीतर ही उग्रवादियों द्वारा नरमपंथी नीतियों की आलोचना कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसकी उपलब्धियां तथा उसकी असफलताएं।

2..3 प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें

2..3.1 प्रथम चरण में कांग्रेस का संगठन

कांग्रेस अपने प्रारम्भिक चरण में एक राजनीतिक दल की भूमिका निभाने में असफल हुई थी। वास्तव में इसका काम हर साल के सप्ताहान्त में किसी शहर में देश के राष्ट्रीय नेताओं को सम्मिलित कर तीन-चार दिन का एक आयोजन करने तक सीमित था। इस आयोजन के दौरान रस्मी तौर पर देश की जनता की शाश्वत एवं तत्कालीन समस्याओं को उठाया जाता था। यूं तो कांग्रेस अधिवेशनों के द्वार सभी के लिए खुले थे किन्तु इसके लिए प्रतिनिधि का नाम संगठन के द्वारा प्रस्तावित किया जाना अथवा एक सार्वजनिक सभा में उसका नामांकन किया जाना आवश्यक था। अधिवेशन में प्रतिनिधि बनने के लिए व्यक्ति को 10 से 20 रुपये तक का शुल्क देना होता था और इसके अतिरिक्त उसे अपने स्थान से अधिवेशन के स्थान तक आने जाने के व्यय का भी स्वयं निर्वाह करना होता था। देश की जनता के तत्कालीन आर्थिक संसाधनों को देखते हुए कांग्रेस का सदस्यता शुल्क तथा प्रतिनिधि शुल्क दे सकना आम आदमी के लिए अत्यन्त कठिन था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की कार्रवाही आमतौर पर अंग्रेज़ी भाषा में होती थी। इन कारणों से कांग्रेस अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त शहरी मध्यवर्ग तक सिमटी हुई थी। 1905 में भी नरमपंथी गोपाल कृष्ण गोखले केवल शिक्षित वर्ग के लिए ही राजनीतिक अधिकारों की मांग कर रहे थे क्योंकि उनकी दृष्टि में राजनीतिक विषयों की समझ रखने के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त थी। कांग्रेस के अधिवेशनों की तड़क-भड़क देखते ही बनती थी। आमतौर पर अधिवेशनों के आयोजनों में ही इसके संसाधनों का अधिकांश भाग खर्च हो जाता था।

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में सदस्यों की कुल संख्या मात्र 72 थी। इसके दूसरे सत्र में यह संख्या पहले सत्र से छह गुने से भी अधिक - कुल 434 हो गई। इसमें जनता के चुने प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मद्रास में हुए कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या 607 हो गई। इलाहाबाद में कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में इसके सदस्यों की संख्या 1248 और 1889 में बम्बई में हुए इसके पांचवे अधिवेशन में यह संख्या बढ़कर 1889 हो गई।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष डब्लू0 सी0 बैनर्जी एक भारतीय ईसाई, दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी एक पारसी, तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी एक मुसलमान और चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष जॉर्ज यूल एक अंग्रेज़ थे। इन अध्यक्षों के चयन ने कांग्रेस की धर्मनिर्पेक्षता के सिद्धान्त में आस्था व उसके जातिगत भेदभाव में पूर्ण अविश्वास को स्पष्ट कर दिया।

सन् 1885 से लेकर सन् 1906 तक ए0 ओ0 ह्यूम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऑनरेरी जनरल सेक्रेटरी बने रहे। ह्यूम कांग्रेस के अधिवेशनों के सुचारु संचालन, देश के विभिन्न नेताओं से सम्पर्क, उसके वित्तीय मामलों की देखभाल तथा अधिवेशनों की रिपोर्ट तैयार करने के दायित्वों का निर्वाह करते थे। वास्तव में गोपाल कृष्ण गोखले से पूर्व ए0 ओ0 ह्यूम ही एक मात्र व्यक्ति थे जिसने अपना पूरा समय कांग्रेस के कार्यों के लिए समर्पित कर रखा था।

2..3.2 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

कांग्रेस के नरमपंथी नेता एडमन्ट बर्क, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा जॉन मोर्ले के उपयोगितावादी सिद्धान्तों से प्रभावित थे। कांग्रेस के प्रारम्भिक बीस वर्षों में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, फ़िरोज़ शाह मेहता, डब्लू0 सी0 बैनर्जी, बदरुद्दीन तैयबजी, रासबिहारी घोष, आनन्द मोहन बोस, लालमोहन बोस, रमेश चन्द्र दत्त, के0 टी0 तैलंग, वीर राघवचारी, आनन्द चारलू, दिनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले, सुब्रह्मण्यम अय्यर, पण्डित मदन मोहन मालवीय, सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि नेताओं ने सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करते हुए भी याचिकाओं, शिष्ट मण्डलों, जनसभाओं, पैम्फ्लैटों, स्मरणपत्रों, इंग्लैण्ड में जनता के समक्ष तथा पार्लियामेन्ट में भारत का पक्ष रखने में तथा अखबारों के माध्यम से अपनी निर्भीक राय रखने की रणनीति अपनाई। विलियम वेडरबर्न को इंग्लैण्ड में कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया और कांग्रेस की मांगों को इंग्लैण्ड वासियों के सम्मुख रखने के लिए इण्डिया पत्र का प्रकाशन किया गया।

कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में सरकार के प्रति पूर्ण अविश्वास और विरोध की नीति को नहीं अपनाया क्योंकि उसे विश्वास था कि महारानी के 1858 के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों के कार्यान्वयन में सरकार आनाकानी नहीं करेगी। कांग्रेस के नेताओं ने उदार ब्रिटिश जनता की सहानुभति प्राप्त कर भारत में राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक, शैक्षिक व प्रशासनिक सुधार प्राप्त करना सम्भव माना। नरमपंथियों का यह मानना था कि भारतीयों के साथ हो रहे अन्याय तथा ब्रिटिश चरित्र के सर्वथा विरुद्ध शासन के लिए मुख्यतः वाइसराय, उसकी कार्यकारिणी तथा स्थानीय नौकरशाही ज़िम्मेदार है और इसके परिष्कार हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट, गृह सरकार और ब्रिटिश जनता तक अपनी शिकायतें पहुंचाना आवश्यक है। दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में तथा गोपालकृष्ण गोखले ने भारत की केन्द्रीय विधान परिषद में भारतीयों की समस्याओं को रखा तथा सरकार की कथनी और उसकी करनी में फ़र्क को उजागर किया। आमतौर पर इन नेताओं को विश्वास था कि कॉब्डेन, बेंथम, ब्राइट, मिल तथा ग्लैड्सटन के देश की जनता तथा सरकार उनके न्यायपूर्ण अधिकारों को दिलाने में उनका साथ देगी। उनका लक्ष्य जनता को राजनीतिक आन्दोलन करने की शिक्षा देना और भारतीयों की आकांक्षाओं को ब्रिटिश जनता और राजनीतिज्ञों तक पहुंचाना था ।

कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में संवैधानिक सुधारों की मांगों में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के कार्यक्षेत्र तथा उसके सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि और उसके सदस्यों को जनता द्वारा निर्वाचित किया जाना सम्मिलित था। प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों की मांगें रखी गईं।

कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को महत्व दिया गया। इस काल में भारतीय शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने की मांग की गई। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन भारत में भी करने और इसके हेतु परीक्षा देने वाले अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु सीमा बढ़ाने की मांगों को बार-बार रखा गया। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की रंगभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार-बार रखी गई। प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय में कमी किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

कलकत्ते में आयोजित कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन का अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी को चुना गया। अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन के कारण भारत की विपन्नता का उल्लेख किया था। दूसरे अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष राजेन्द्रलाल मित्र ने कहा था -

हमारी विदेशी नौकरशाही, जन्म, धर्म और प्रकृति में हमसे भिन्न है। वह हमारी आवश्यकताओं, भावनाओं और आकांक्षाओं को समझ नहीं सकती।

दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी आदि ने भारत के खाद्यान्न तथा अन्य उत्पादन, उसके आयात, निर्यात, प्रति व्यक्ति औसत आय, शासन पर होने वाले व्यय तथा जन-कल्याण पर किए जाने वाले व्यय सम्बन्धी प्रामाणिक आंकड़े एकत्र किए और सरकार से भूमि कर में कमी करने, अपनी अकाल नीति में सुधार करने और भारतीय उद्योग को प्रोत्साहन व संरक्षण देने की मांग की। 1888 में सरकार ने जब नमक कर में वृद्धि की तो कांग्रेस ने इस वृद्धि का विरोध किया क्योंकि इससे सबसे अधिक हानि निर्धन वर्ग को होने वाली थी। कांग्रेस ने पॉन्ड-रूपया सम्बन्ध में भारतीय हितों की उपेक्षा और नवोदित भारतीय मिलों के विकास में बाधा डालने की सरकारी नीति की भी आलोचना की थी।

2.3.3 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

कांग्रेस को यह आशा थी कि भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित किए जाने की दिशा में सरकार की ओर से प्रारम्भिक कदम उठाए जाएंगे और इसके लिए सबसे पहले विधान परिषदों में सदस्यों के निर्वाचन की प्रक्रिया शुरू की जाएगी। 1888 में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन ने भारत सचिव लॉर्ड क्रास को लिखे गए अपने पत्र में प्रान्तीय परिषदों के कार्यक्षेत्र में विस्तार और उसके सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने का सुझाव दिया था तथा उनके सदस्यों के निर्वाचन की बात भी रखी थी। भारत में लॉर्ड डफ़रिन के उत्तराधिकारी लॉर्ड लैन्सडाउन ने भी उसके सुझावों का अनुमोदन किया था किन्तु भारत सचिव लॉर्ड क्रास तथा इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लॉर्ड सेलिसबरी की दृष्टि में प्रान्तीय परिषदों में चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ किए जाने का अभी उचित समय नहीं था क्योंकि इससे विभिन्न जातियों और वर्गों के हितों की रक्षा कर पाना कठिन हो जाता। 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में केन्द्रीय विधान परिषद और प्रान्तीय विधान परिषदों में चुनाव की व्यवस्था लागू नहीं की गई और इसके सदस्यों संख्या व उनके अधिकारों में भी मामूली सी वृद्धि ही की गई और साथ ही साथ इन सभी में सरकारी सदस्यों का बहुमत बना रहा। कांग्रेस को 1892 के इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट से घोर निराशा हुई और उसका सरकार की सुधार करने की सदाशयता पर से विश्वास उठने लगा।

2..3.4 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में अकालों की आवृत्ति और भयावहता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। अकाल की समस्या से निपटने के लिए फ़ैमिन कोड का गठन किया जा चुका था किन्तु उससे भारत की जनता को कोई लाभ नहीं पहुंच रहा था। 1896-97 में पड़े भयंकर दुर्भिक्ष में ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र में कुल 50 लाख और 1899-1900 में कुल 10 लाख लोग भुखमरी का शिकार हुए थे। भुखमरी फैलने के दौरान भी भारत से आमतौर पर प्रतिवर्ष दस लाख टन अनाज

का निर्यात किया जाता रहा। नरमपंथियों ने सरकार की अकाल नीति की निर्भीक आलोचना की और सरकार से अकाल की स्थिति से निपटने के लिए ठोस और स्थायी कदम उठाने की मांग की।

कांग्रेस की एक प्रमुख मांग थी कि भारतीयों को प्रशासन, न्याय व्यवस्था, सेना, रेलवेज़, षिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए। इससे न केवल योग्य भारतीयों को उन्नति के अवसर प्राप्त होते अपितु सरकार के खर्च में भी कमी आती।

लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल की दमनकारी नीतियों का कांग्रेस ने खुलकर विरोध किया। महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारूढ़ होने की हीरक जयन्ती पर भारत में भयानक दुर्भिक्ष के समय भी उत्सवों में प्रचुर मात्रा में सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग हुआ। कर्ज़न की राजनीतिक दमन और प्रशासनिक अपव्यय की नीतियों पर भारतीयों द्वारा नियन्त्रण न रख पाने की असमर्थता पर 1901 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए डी0 एन0 वाचा ने कहा था -

'भारत को यह स्वतन्त्रता या अधिकार नहीं है कि वह अपना प्रशासक चुन सके। यदि उसे ऐसा करने का अधिकार होता तो वह पूरी तरह से स्वदेशी संस्था चुनता जो कि देश का पैसा देश के ऊपर ही खर्च करती।'

दरिद्रता में आकण्ठ डूबे भारत में प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय विश्व में किसी भी देश के प्रशासनिक व्यय से अधिक था। प्रशासन तथा सेना की सभी शाखाओं में सभी ऊँचे पदों पर अंग्रेज़ों का एकाधिकार रहा। सरकारी व्यय में निरन्तर वृद्धि होती गई। भारतीय सेना पर भी अत्यधिक व्यय किया जा रहा था और उसका उपयोग विदेशी भूमि पर युद्ध करने के लिए भी किया जा रहा था। भारत में शासन करने के शुल्क के रूप में इंग्लैण्ड भेजे जाने वाले होमचार्ज में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। भारतीय ऋण 1901-02 में 312 करोड़ रुपये हो गया था।

कांग्रेस ने इस आर्थिक दोहन की निर्भीकतापूर्वक निन्दा की। 1902 के कांग्रेस अधिवेशन में भारी नमक कर के कारण पर्याप्त नमक खरीद पाने में असमर्थता के फलस्वरूप निर्धन वर्ग में नमक की कमी से होने वाली अनेक बीमारियों के फैलने पर चिन्ता व्यक्त की गई और कपास पर उत्पादन शुल्क हटाने की मांग की गई क्योंकि इससे भारतीय कपड़ा उद्योग के विकास में बाधा पहुंच रही थी। 1904 के कांग्रेस अधिवेशन में दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्रों में भूमि-कर में रियायत किए जाने की बात भी रखी। सरकार से यह भी अपील की गई कि वह वैज्ञानिक कृषि पद्धति को प्रोत्साहित करने और तकनीकी शिक्षा का प्रसार करने के लिए धनराशि आवंटित करे। देश का आधुनिक ढंग से औद्योगिकीकरण करने में सरकार द्वारा पूरी निष्ठा से अपना सहयोग करने तथा भारतीय उद्योग के संरक्षण के लिए आयातित वस्तुओं पर तटकर (टैरिफ़) लगाने की मांगे कांग्रेस अधिवेशनों में रखी जाने वाली मांगों में शामिल थीं। स्वदेशी उद्योग के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियां लगाई गईं। कई स्थानों पर स्वदेशी भंडार खोले गए।

2.3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने धर्मनिर्पेक्ष स्वरूप को पहले ही दर्शा दिया था किन्तु कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में एक भी मुस्लिम सदस्य नहीं था। इसके तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने मुसलमान भाइयों से कांग्रेस में आने की अपील की। अगले

अधिवेशन में मुस्लिम सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई पर अधिकांश मुसलमान अब भी कांग्रेस में स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पाए। उनको अब भी यह लगता था कि कांग्रेस भारत में हिन्दू राज स्थापित करना चाहती है। सैयद अहमद खान ने कांग्रेस को बंगाली हिन्दुओं के प्रभुत्व वाला दल बताया और यह कहा कि यदि कांग्रेस की मांगे मान ली गईं तो भारत में बंगाली हिन्दुओं का शासन स्थापित हो जाएगा। उन्होंने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। प्रारम्भ में कांग्रेस में मुस्लिम सदस्यों का प्रतिशत 13.5 तक बढ़ा किन्तु 1893 के साम्प्रदायिक दंगों के बाद यह गिरकर 7.1 प्रतिशत रह गया।

2.3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

कांग्रेस अधिवेशनों में सरकार के प्रति बार-बार निष्ठा व्यक्त की गई परन्तु इसके बावजूद इंग्लैण्ड की जनता कांग्रेस को भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए एक खतरा मानती रही। लन्दन के पत्र दि टाइम्स के सम्पादकीय टिप्पणी में कहा गया कि कांग्रेस की मांगे मानकर सरकार भारत में भारतीयों स्वशासन दिए जाने का मार्ग प्रशस्त कर देगी।

गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन प्रारम्भ में कांग्रेस की गतिविधियां सामाजिक मुद्दों तक ही सीमित रखे जाने के पक्ष में था परन्तु बाद में उसने उसके राजनीतिक स्वरूप को स्वीकार किया। सरकार ने कांग्रेस की स्थापना के चार वर्ष बाद ही उसको प्रोत्साहित करने अथवा उसके साथ सहयोग करने की नीति का परित्याग कर दिया। लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। उसकी दृष्टि में मुट्ठी भर शिक्षित शहरी मध्य वर्ग के दल को जिसको कि भारत के राजनीतिक पटल पर केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से देख जा सकता था, भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं था। 1888 के बाद सरकारी अधिकारियों को कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी गई। सरकार ने कांग्रेस के प्रस्तावों की सामान्यतः नितान्त उपेक्षा की। इससे सर ए0 ओ0 ह्यूम को बहुत अधिक निराशा हुई। उन्होंने कहा -

शिक्षित भारतीय समुदाय, प्रेस और कांग्रेस, तीनों की सलाहों को अनसुनी कर सरकार ने अपने निरंकुश होने का सबूत दे दिया है।

कांग्रेस ने सरकार के आर्थिक दोहन की नीति का पर्दाफ़ाश किया । कांग्रेस के द्वारा अपनी नीतियों को आर्थिक दोहन, रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियां ठहराया जाना सरकार को सहन नहीं हुआ । सरकार द्वारा कांग्रेस की प्रगति में बाधा पहुंचाई जाने लगी । 1888 में मैसूर के महाराजा को कांग्रेस को चन्दा देने के लिए वाइसराय डफ़रिन ने फटकार लगाई थी। 1900 में गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने भारत सचिव को लिखे एक पत्र में कांग्रेस को पतन की कगार पर खड़ा बताया था और भारत में अपने शासनकाल में उसके शान्तिपूर्ण अवसान की कामना की थी।

2.3.7 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

कांग्रेस में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिन चन्द्र पाल ने सरकार की नीतियों को मूलतः शोषक, दमनकारी, रंगभेदी तथा जातिभेदी मानते हुए यह साफ़ किया कि सरकार के सदाशय में आस्था रखकर, संविधान की सीमाओं मे रहते हुए तथा सरकार से सहयोग करते हुए कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। लोकमान्य तिलक ने भीख मांगने के स्थान पर लड़कर

अपना अधिकार लेने की रणनीति अपनाने के लिए कांग्रेस पर दबाव डाला और कांग्रेस को शिक्षित शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक दल से उसे आम भारतीय जनता का दल बनने की सलाह दी। युवा कवि रबीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कांग्रेस की याचक प्रवृत्ति की आलोचना की थी और सुधारों के लिए आत्मशक्ति पर आधारित कार्यक्रमों की महत्ता दर्शाई थी। कांग्रेस के भीतर ही उभरते हुए विरोधी स्वरों में उसकी कागज़ी कार्यवाही करने की नीति की आलोचना की गई।

2.4 उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

2.4.1 कांग्रेस के प्रथम चरण की सीमाएं

कांग्रेस के त्रि-दिवसीय अधिवेशनों में बड़ी-बड़ी मांगे रखने के बाद शेष समय चुपचाप बैठ जाने की उसके नेताओं की दुर्बलता की भी आलोचना की गई। कांग्रेस के 1897 के अमरावती अधिवेशन को अश्विनीकुमार दत्त ने तीन दिनों का तमाशा कहा था। गोपालकृष्ण गोखले और मदनमोहन मालवीय जैसे नेताओं ने त्यागपूर्ण सार्वजनिक जीवन की मिसाल कायम की परन्तु अधिकांश भारतीय नेता आराम की ज़िन्दगी बिताते हुए अपना अधिकतर समय अपने-अपने व्यवसाय में ही व्यस्त रहने में लगाते थे। दिनशा वाचा ने इस विषय में फ़िरोज़शाह मेहता, एम0 जी0 रानाडे तथा के0 टी0 तैलंग की आलोचना की थी। अनेक नेता कांग्रेस से केवल इसलिए जुड़ना चाहते थे क्योंकि इसकी सदस्यता ग्रहण कर उनकी न केवल सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी अपितु इससे उन्हें बड़े-बड़े अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करने का सुअवसर भी प्राप्त होता था। प्रसिद्ध उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने इन भारतीय नेताओं की जीवन शैली पर व्यंग्य कसते हुए कहा था-

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।
रंज लीडर को बहुत हैं, मगर आराम के साथ।।

(देश तथा देशवासियों की चिन्ता करने वाले नेतागण सरकारी अधिकारियों के साथ रात्रि-भोज करते हैं। देशसेवा करने में इनको कष्ट तो बहुत होते हैं मगर इनके विलासितापूर्ण जीवन में कोई बाधा नहीं पड़ती।)

वास्तव में उस समय भारत राजनीतिक चेतना की प्रक्रिया के प्रथम चरण से गुज़र रहा था अतः इसमें आम जनता की भागीदारी नहीं थी बल्कि इसमें वकीलों, पत्रकारों, शिक्षकों आदि शहरी मध्य वर्ग का ही प्रतिनिधित्व था। अपने प्रारम्भिक चरण में कांग्रेस आम भारतीयों का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी और लॉर्ड डफ़रिन का यह कहना एक सीमा तक उचित था-

कांग्रेस रिप्रज़ेन्ट्ज़ दि माइक्रोस्पिक माइनॉरिटी इन इण्डिया।

कांग्रेस के अनेक सदस्यों ने सरकार के श्रमिकों की सुरक्षा हेतु उठाए गए कदमों का केवल इसलिए विरोध किया था क्योंकि उनके स्वयं के हित नवोदित भारतीय उद्योग से जुड़े हुए थे। कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकार कांग्रेस को एक राष्ट्रवादी राजनीतिक दल नहीं अपितु इसे महत्वाकांक्षी, सत्ता लोलुप मध्यवर्गीयों का आन्दोलन मानते हैं।

2.4.2 सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में बदलाव लाने में कांग्रेस की असफलता

सरकार की नीतियों को बदलने में अथवा उसकी शोषक प्रकृति बदलने में कांग्रेस को बहुत कम सफलता मिली। भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की दिशा में सरकार ने कछुए की गति

से भी धीमा रुख अपनाया। सरकार ने 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में विधानपरिषदों में चुनाव की प्रक्रिया षुरू की जाने वाली भारतीयों की मांग को स्वीकार नहीं किया। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन इंग्लैण्ड के साथ-साथ भारत में नहीं किया गया। उच्च सेवाओं में भारतीयों की संख्या नगण्य ही रही। सरकार प्रशासनिक तथा सैनिक अपव्यय में पूर्ववत लिप्त रही। होमचार्ज बढ़ता ही रहा और भारत से धन का दोहन भी पूर्ववत जारी रहा। भारतीय उद्योग को संरक्षण दिला पाने में कांग्रेस नाकाम रही और ब्रिटिश भारतीय सरकार अभी भी ब्रिटेन के उद्योगपतियों के इशारों पर नाचती रही। कांग्रेस सरकार की रंगभेदी व जातिभेदी नीतियों में बदलाव लाने में भी असफल रही।

2.4.3 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपलब्धियां

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इसके द्वारा पारित प्रस्तावों का जनता में व्यापक प्रसार-प्रचार किया गया। समाचार पत्रों ने इस संगठन का स्वागत किया। इंग्लैण्ड में भारतीयों की समस्याओं को उठाने में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व विलियम वैडरबर्न, चार्ल्स ब्रैडला तथा जॉन डिग्बी ने किया। धर्मनिर्पेक्ष, अहिंसक राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात करने के साथ-साथ कांग्रेस के प्रथम चरण के नेताओं ने भारतीयों को एकसूत्र में बांधने का सराहनीय कार्य भी किया। आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में उनका अभूतपूर्व योगदान था। उन्होंने व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा सामाजिक समानता की महत्ता को जन-जन तक पहुंचाया, समाज सुधार हेतु 'नेशनल सोशल कॉन्फ्रेन्स' जैसी संस्थाओं को अपना पूर्ण सहयोग दिया। स्वदेशी की भावना का प्रसार-प्रचार करने में भी उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियों का आयोजन कर उन्होंने भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता की महत्ता को जन-साधारण तक पहुंचाया। कांग्रेस के लगभग सभी प्रारम्भिक नेता पत्रकारिता से सम्बद्ध रहे। निर्भीक तथा प्रतिबद्ध पत्रकारिता के उन्नत मापदण्ड स्थापित करने में भी उन्हें सफलता मिली थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को हम भारतीय राजनीति का पहला जन-नायक कह सकते हैं। दादा भाई नौरोजी को हम आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक के रूप में जानते हैं। कांग्रेस के उग्रवादी नेताओं और महात्मा गांधी जैसे जन-नायकों ने नरमपंथियों से बहुत कुछ सीखा था। महात्मा गांधी को दक्षिण अफ्रीका से भारतीय राजनीति में लाने का श्रेय गोपाल कृष्ण गोखले को जाता है। गांधीजी उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के संस्थापक मदन मोहन मालवीय जैसे नरमपंथी भारत में शिक्षा प्रसार में अमूल्य योगदान के लिए आज भी स्तुत्य हैं। अपने प्रारम्भिक चरण में कांग्रेस ने भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण प्रदान किया था और भविष्य में होने वाले सक्रिय राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1.कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना।

2.प्रथम चरण में कांग्रेस से भारतीय मुसलमानों का अलगाव।

3.कांग्रेस के प्रथम चरण में सरकार का उसके प्रति रवैया।

2.5 सारांश

ए0 ओ0 ह्यूम द्वारा स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक धर्मनिर्पेक्ष राजनीतिक संस्था थी। शिक्षित शहरी मध्यवर्ग लोकतान्त्रिक प्रणाली की स्थापना की दिशा में कांग्रेस के प्रयास अधिक सफल नहीं हुए क्योंकि सरकार अपने सुधारवादी मुखौटे को उतारकर जल्द ही एक दमनकारी, स्वार्थी, शोषक और निरंकुश रूप में प्रकट हो गई। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए कांग्रेस के प्रथम चरण में सराहनीय कार्य किया गया। कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की नीतियों में रंगभेद व जातिभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार-बार रखी गई। आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में कांग्रेस का अभूतपूर्व योगदान था। स्वदेशी की भावना का प्रसार-प्रचार करने में भी राष्ट्रीय नेताओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। सैयद अहमद खान ने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। सरकार ने सदैव यह प्रयास किया कि मुसलमान, भारतीय रियासतों के शासकगण, ज़मींदार, उद्योगपति आदि कांग्रेस से दूरी बनाए रखें।

कांग्रेस अपने प्रथम चरण में सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में स्वस्थ बदलाव लाने में निष्फल रही। कांग्रेस के भीतर ही रहते लोकमान्य तिलक तथा उनके सहयोगियों ने यह स्पष्ट किया कि सरकार से सहयोग करते हुए और भीख मांगकर कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। कांग्रेस अपने प्रथम चरण में मुख्यतः शहरी मध्य वर्ग तक ही सीमित रही और आम आदमी से इसका जुड़ाव नहीं हो सका किन्तु कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में हर अन्याय का साहसपूर्वक प्रतिकार किया, राष्ट्रीय आन्दोलन को एक स्वस्थ दिशा प्रदान कर स्क्रिय राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की, जागरूक व प्रतिबद्ध पत्रकारिता के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया और भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराया।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

व्यक्ति स्वातन्त्र्यः नागरिक अधिकारों की रक्षा अर्थात् कानून के दायरे में रहते हुए कुछ भी करने अथवा कहने की स्वतन्त्रता।

आकण्ठः गले तक

क़ौमः जाति, देशवासी।

हुक्कामः अधिकारी गण।

धर्मनिर्पेक्षः धर्म से परे अर्थात् धर्म के बन्धनों से हटकर।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.देखिए 2.3.4 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

2.देखिए 2..3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

3.देखिए 2..3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

2. 8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, (भाग 1 व 2), बम्बई, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

चन्द्रा, बिपन - दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेषनलिज़्म इन इण्डियानई दिल्ली, 1965

बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाषक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

नौरोजी, दादाभाई - पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1902

घोष, पी0 सी0 - दि डवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1960

सीतारमैया, पी0 - दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1946

नन्दा, बी0 आर0 - गोखले, दि इण्डियन मॉडरेट्स एण्ड दि ब्रिटिश राज, दिल्ली, 1977

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में नरमपंथियों के योगदान का आकलन कीजिए।

2.कांग्रेस के प्रथम चरण में उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई तीन

उग्रवादी आन्दोलन के उदय के कारण

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पूर्व भारत में उग्र राष्ट्रवाद का विकास

3.3.1 प्राचीन भारत में राष्ट्रवादी भावना का विकास

3.3.2 मध्यकालीन भारत में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

3.3.3 पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

3.3.3.1 उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन

3.3.3.2 आर्यसमाज

3.3.3.3 स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन

3.3.3.4 थियोसोफ़िकल सोसायटी

3.3.4 उग्र राष्ट्रवादी साहित्य का विकास

3.3.4.1 बंकिमचन्द्र चटर्जी

3.3.4.2 अन्य राष्ट्रवादी साहित्यकार

3.4 भारत में उग्र राजनीतिक विचारधारा का विकास

3.4.1 नरमपंथियों की नीतियों के प्रति आक्रोश

3.4.2 लोकमान्य तिलक

3.4.3 लाला लाजपत राय

3.4.4 बिपिन चन्द्र पाल

3.4.5 अरबिन्दो घोष

3.4.1.5 अन्य उग्रवादी नेता

3.5 उग्रवाद की असफलताओं और उसकी उपलब्धियों का आकलन

3.5.1 सरकार द्वारा उग्रवाद का दमन

3.5.2 उग्रवाद का स्वतः शिथिल पड़ना

3.5.3 उग्रवादी आन्दोलन की असफलताएं

3.5.4 उग्रवादी आन्दोलन की उपलब्धियां

3.6 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भारतीयों में अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना के दर्शन होते हैं। हमारे वेदों, पुराणों तथा साहित्य में अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। भारत पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिन्दुओं की दृष्टि में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ उठाया जाने वाला हर प्रयास देशभक्ति माना जाने लगा। भारतीय संस्कृति और परम्परा में फिर से अभिरुचि और भारत के गौरवशाली अतीत के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता भारतीय नवजागरण की एक प्रमुख विशेषता थी। एशियाटिक सोसायटी तथा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफ़िकल सोसायटी आदि पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों व बंकिम चन्द्र, एच0 एन0 आप्टे जैसे साहित्यकारों ने भारत में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उग्र राष्ट्रवाद के विकास में अपना योगदान दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक भारत में औपनिवेशिक शासन की दमनकारी एवं शोषक नीतियों का खुलासा हो चुका था। अब सरकार के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सहयोग कर भारतीयों के लिए शासन के हर क्षेत्र में सुधार की अपेक्षा करने की नीति की निरर्थकता सिद्ध हो चुकी थी। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो घोष आदि उग्रवादियों ने भारतीयों को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए भीख मांगने के स्थान पर लड़ना सिखाया। उग्रवादी भारतीय धर्म, संस्कृति और उसके गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने के पक्षधर थे। उनके आलोचकों ने उन पर हिन्दू राष्ट्रवाद को पोषण देने का आरोप लगाया। उग्रवादियों ने स्वराज, स्वशासन तथा स्वदेशी को अपना राजनीतिक लक्ष्य बनाया तथा राजनीतिक आन्दोलन में आम आदमी की सहभागिता को महत्ता दी। बंगाल विभाजन के विरुद्ध उग्रवादियों ने सक्रिय राजनीतिक विरोध का मार्ग अपनाया। 1907 में नरमपंथियों व उग्रवादियों में मतभेद बढ़ जाने के कारण कांग्रेस का विभाजन हो गया। सरकार ने उग्रवादियों के दमन हेतु कठोर कदम उठाए। 1908 के बाद उग्रवादी आन्दोलन मन्द पड़ गया किन्तु उग्रवादियों के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को आने वाले समय में राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बना लिया गया।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में उग्रवादियों की विचारधारा, उनकी कार्य-शैली व राष्ट्रीय आन्दोलन पर उग्रवादियों के प्रभाव से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1 - भारत में उग्र राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2 -पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों में उग्र राष्ट्रवाद के तत्व

3 - उग्र राष्ट्रवादी साहित्य

4 - बाल-लाल-पाल की त्रिमूर्ति, अरबिन्दो घोष तथा अन्य उग्र राष्ट्रवादियों के विचार तथा उनकी कार्य-प्रणाली

5 - उग्रवादियों का विरोध तथा उनका दमन

6 - भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों के योगदान का आकलन

3.3 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पूर्व भारत में उग्र राष्ट्रवाद का विकास

3.3.1प्राचीन भारत में राष्ट्रवादी भावना का विकास

प्राचीन काल में भारतीयो में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। वेदों में राष्ट्र की रक्षा और सुरक्षा, एकता और संगठन पर अनेक बार प्रकाश डाला गया है। वेदों में अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने का उपदेश दिया गया है और राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। भारतमाता की परिकल्पना भी वैदिक साहित्य में ही विकसित हुई है। पुराण भारत महिमा से भरे हुए हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरुत्वात्।।

(इस देश की महिमा का देवता भी गान करते हैं। वे लोग धन्य हैं जो इस पवित्र भारतभूमि में जन्म पाते हैं। देवत्व की समाप्ति पर यहाँ मानव-जाति में जन्म पाने के लिए देवगण भी लालसा करते हैं।)

हमारे महाकाव्यों - रामायण और महाभारत में, भी स्वदेश-प्रेम और स्वदेशी की भावना मुखरित हुई है। कालिदास की रचनाओं में भारतीय इतिहास के गौरवशाली अध्याय का चित्रण मिलता है।

3.3.2 मध्यकालीन भारत में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

मध्यकाल में हमारे देश में प्रान्तीयता तथा क्षेत्रवाद के भाव ने हमारी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। देशप्रेम अब अपने राज्य अथवा अपने क्षेत्र तक सिमट कर रह गया। भारत पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिन्दुओं की दृष्टि में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ उठाया जाने वाला हर प्रयास देशभक्ति माना जाने लगा। मध्यकाल में हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा का विकास हुआ। विजय नगर के शासकों ने 'हिन्दूराय सुरत्न' की उपाधि धारण की। दिल्ली के शासक हेमू ने 'सम्राट हेमचन्द्र विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। महाराष्ट्र में वाराकरी पंथ के सन्तों ने महाराष्ट्र धर्म का विकास कर धर्म, संस्कृति और भाषा को आधार बनाकर मराठा जाति को एकसूत्र में बांधने का सफल प्रयास किया। मेवाड़ के महाराणा प्रताप स्वयं को 'हिन्दूकुल कमल-दिवाकर' कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। जैसोर के षासक महाराज प्रतापादित्य ने मुगल शासनकाल में स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का प्रयास किया था।

बर्दवान के शासक राजा सीताराम राय ने भी हिन्दुओं के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रयास किया था। महाराष्ट्र में 1674 में छत्रपति के रूप में अपना राज्याभिषेक कर शिवाजी ने 'हिन्दवी स्वराज्य' की स्थापना की थी। कवि भूषण शिवाजी को हिन्दू धर्म, आचार-विचार और संस्कृति का रक्षक और अपनी तलवार से हिन्दू धर्म व हिन्दुओं के शत्रु बादशाह औरंगज़ेब के मान का मर्दन करने वाला कहते हैं -

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,

अस्मृति पुरान राखे बेद-विधि सुनी मैं।

राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी मैं।
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस-देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं।।

कविवर बिहारी जैसे श्रृंगारिक कवि ने अपने संरक्षक आमेर के शासक मिर्ज़ा राजा जयसिंह को विजातीय औरंगज़ेब के आदेश पर स्वजातीय शिवाजी पर आक्रमण करने को शिकारी के कहने पर बाज द्वारा अपनी ही पक्षी जाति का शिकार करने के समान निन्दनीय बताया था -

स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा, देख विहंग बिचारि,
बाज पराए पान परि, तू पच्छीन न मार।।

प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने 'हिन्दू-पद-पादशाही' का स्वप्न देखा था जिसको कि उसके पुत्र पेशवा बाजीराव प्रथम ने साकार रूप देने का प्रयास किया था। 1761 में पेशवा बालाजी बाजीराव के आदेश पर सदाशिव राव भाऊ व विश्वास राव के नेतृत्व में मराठों ने हिन्दू साम्राज्य की स्थापना कर दिल्ली को उसका एक अंग बनाने के लिए उत्तर भारत की ओर अभियान किया था। पंजाब के महाराणा रंजीत सिंह ने सिक्ख तथा हिन्दू परम्पराओं को संरक्षण प्रदान किया था।

3.3.3 पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

3.3.3.1 उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन

भारतीय संस्कृति और परम्परा में फिर से अभिरुचि और भारत के गौरवशाली अतीत के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता भारतीय नवजागरण की एक प्रमुख विशेषता थी। भूतकाल की अपनी उपलब्धियों के ज्ञान ने भारतीयों में आत्मविश्वास जाग्रत किया। एशियाटिक सोसायटी से सम्बद्ध विद्वानों ने मौलिक शोध करके तथा महत्वपूर्ण भारतीय ग्रंथों का अनुवाद करके ने पाश्चात्य जगत को भारतीय धर्म, दर्शन और साहित्य की महानता से परिचित कराया। जागरूक भारतीयों में धीरे-धीरे हीन भावना समाप्त होती जा रही थी। उन्हें अपने गौरवशाली अतीत के ज्ञान से वर्तमान दुर्दशा को सुधारने की प्रेरणा मिली। अपने देश की वैभवशाली परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए वह प्रयत्नशील हो गए। 'यंग बैंगाल' के जनक विवियन डेरोज़ियो ने भारतीयों को अपने गौरवशाली इतिहास पर गर्व करना सिखाया। सनातनधर्मी राजा राधाकान्त देव पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के एक प्रमुख स्तम्भ थे। उन्होंने सन् 1851 में प्रसिद्ध प्राच्यवादी मैक्समुलर को लिखा था -

मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा है यही है कि मेरे देश में जहाँ कि संस्कृत का अध्ययन उपेक्षित हो रहा है, उसे पुनर्जीवित किया जाय।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में ही हिन्दू समाज के पुनरुत्थान हेतु प्रयास प्रारम्भ हो गए थे। बंगाल में नबगोपाल मित्र के 'नेशनल एसोसियेशन' तथा कमल कृष्ण देव और कालीकृष्ण देव द्वारा स्थापित 'सनातनधर्मरक्षिणी-सभा' ने पुनरुत्थानवादी आन्दोलन की शुरूआत की।

'सनातनधर्मरक्षिणी सभा' की गतिविधियों में हिन्दू शास्त्रों की व्याख्या तथा शास्त्रीय संस्कारों का पुनरुत्थान सम्मिलित थे।

3.3.3.2 आर्यसमाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का लक्ष्य वैदिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करना था। आर्य समाज ने वैदिक धर्म पर प्रहार करने वालों के प्रति आक्रामक रूप धारण किया। वैदिक धर्म की रक्षा करते हुए उन्होंने मुस्लिम और ईसाई धर्म प्रचारकों की आक्रामकता का उनकी ही शैली में उत्तर दिया। जिन हिन्दुओं ने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया था, उनके लिए अपने धर्म में वापस लौटने के सभी मार्ग हिन्दू समाज ने अवरुद्ध कर दिए थे परन्तु दयानन्द सरस्वती ने अपने शुद्धि आन्दोलन के द्वारा ऐसे लोगों के लिए अपनी शुद्धि करा के फिर से हिन्दू बनने का रास्ता साफ़ कर दिया। आर्य समाज को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि उसने हिन्दुओं में व्याप्त हीनभावना का उन्मूलन करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। आर्य समाज द्वारा स्थापित विद्यालयों और पाठशालाओं में वैदिक मूल्यों के संरक्षण का समुचित प्रबन्ध किया गया और संस्कृत भाषा व देवनागरी लिपि को विशेष महत्व दिया गया। स्वामीजी ने स्वराज और स्वदेशी की महत्ता को दर्शाया। उन्होंने अंग्रेज़ों के स्वदेश प्रेम और उनकी स्वदेशी की भावना की प्रशंसा की। स्वामीजी ने देशवासियों के लिए विदेशी सुराज की तुलना में दोषपूर्ण स्वराज को श्रेयस्कर माना। स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय सामाजिक परिष्कार हेतु विदेशी शासकों व सुधारकों की सहायता और उनका मार्ग-दर्शन आवश्यक नहीं समझते थे अपितु इस विषय में भी उन्होंने भारतीयों को आत्म-निर्भर होने का उपदेश दिया।

दयानन्द सरस्वती के अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द ने भारतीयों को पश्चिम की अंधी नकल न करने का उपदेश दिया। दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेजों की स्थापना कर दयानन्द सरस्वती के अनुयायियों ने भारतीयों को भारतीय मूल्यों का संरक्षण करने वाली आधुनिक शिक्षा का विकास किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने वैदिक मूल्यों को आदर्श बनाकर हरद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की।

3.3.3.3 स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन

विवेकानन्द को प्राचीन काल के गौरवशाली भारत का घोर पतन देखकर अपार कष्ट हुआ। दरिद्रता, अज्ञान, निराशा, विघटन और कट्टरता ने भारतीयों की उन्नति के सभी द्वार बन्द कर दिए थे। दरिद्र भारतीयों की दशा सुधारने के लिए उन्हें धनधान्य से परिपूर्ण पाश्चात्य जगत की सहायता की आवश्यकता थी पर इस धन को वो भीख में नहीं लेना चाहते थे, इसके बदले में वो पष्चिम को भारतीय आध्यात्म से अवगत करा वहां के निवासियों की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे। उन्होंने पश्चिम से समानता तथा स्वतन्त्रता की भावना और कार्य करने की ऊर्जा ग्रहण कर उसे भारतीयों के उत्थान हेतु प्रयुक्त किया परन्तु उन्होंने आत्मनिर्भरता को उन्नति और मुक्ति की आवश्यक शर्त माना। स्वामीजी पश्चिम की भौतिक उन्नति व वैज्ञानिक प्रगति के प्रशंसक थे किन्तु उसकी आध्यात्मिक अवनति से वो चिन्तित भी थे।

विवेकानन्द के सन्देश में राष्ट्रवाद सन्निहित था। उनका गोरों की और पश्चिम की श्रेष्ठता के सिद्धान्त में कोई आस्था नहीं थी। उनकी दृष्टि में पश्चिम की भौतिकवादी प्रगति भारतीय आध्यात्मिक उन्नति के समक्ष फीकी थी।

3.3.3.4 थियोसोफ़िकल सोसायटी

थियोसोफ़िकल सोसायटी की विचारधारा वेदो, उपनिषदों तथा बौद्ध साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित थी। श्रीमती एनीबीसेन्ट ने 1893 में थियोसोफ़िकल सोसायटी के अड्यार (मद्रास) केन्द्र की कमान सम्भाली। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने हिन्दुओं को अपने धर्म और अपनी संस्कृति पर गर्व करने का संदेश दिया। इस पुनरुत्थानवादी आन्दोलन ने आर्य समाज की भांति भारतीयों को अपने गौरवशाली अतीत पर और अपनी समृद्ध धार्मिक व दार्शनिक धरोहर पर गर्व करना सिखाया।

3.3.4 उग्र राष्ट्रवादी साहित्य का विकास

3.3.4.1 बंकिमचन्द्र चटर्जी

नवजागरणकालीन पुनरुत्थानवादी लेखकों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव तथा मुसलमानों के विरुद्ध राजपूतों, मराठों व सिक्खों के वीरतापूर्ण संघर्ष का गुणगान किया। इन लेखकों में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का नाम सर्वप्रमुख है। बंकिम भारतीय पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के अग्रणी नेता थे। उन्होंने अपने उपन्यास राजसिंह में मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के नेतृत्व में राजपूत स्वतन्त्रता संग्राम का वर्णन किया। उनके उपन्यास दुर्गेश नन्दिनी में हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। आनन्द मठ में उन्होंने सन् 1770 के बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि में आततायी मुस्लिम शासकों के विरुद्ध देशभक्त सन्तानों के सफल संघर्ष की गाथा वर्णित की। इसी उपन्यास में उन्होंने भारतमाता की स्तुति करने वाला 'वन्दे मातरम्' मन्त्र दिया। इस राष्ट्रगान में बंगाल की हरी-भरी धरती की शोभा का गुणगान किया गया है और ऐसी सुखदायिनी मातृभूमि का मानवीकरण करके उसे माँ के रूप में प्रतिष्ठित कर उसको विद्या, धर्म, कर्म, प्राण तथा शक्ति का आधार और शत्रुओं का विनाश करने वाली बताया गया है। बंगाल के सात करोड़ निवासियों के कण्ठों से मातृभूमि की वन्दना और उनकी चौदह करोड़ भुजाओं में उसकी रक्षा हेतु शस्त्र धारण करने की कामना करोड़ों देशवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार करने में सफल रही -

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्।
शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसमित द्रुम दल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्। वन्दे मातरम्।

सप्त कोटि कंठ कलकल निनाद कराले
द्विसप्त कोटि भुजैधृत खर करवाले
अबला केनो माँ तुमि एतो बले!
बहुबल धारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीम् मातरम्। वन्दे मातरम्।

3.3.4.2 अन्य राष्ट्रवादी साहित्यकार

मराठी भाषा में एच0 एन0 आप्टे का ऐतिहासिक उपन्यास वज्रघात राष्ट्रवादी साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है। हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का काव्य-नाटक भारत दुर्दशा भारत के गौरवशाली अतीत और वर्तमान में उसकी दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करता है। उनका नाटक अन्धेर नगरी अप्रत्यक्ष रूप से भारत में ब्रिटिश शासन की असंगतताओं व अन्यायपूर्ण नीतियों पर कटाक्ष करता है। अल्ताफ़ हुसेन हाली का उर्दू में महाकाव्य - मुसद्दसे हाली इस्लाम के गौरशाली अतीत का उल्लेख करते हुए मुसलमानों की वर्तमान में दुखद स्थिति का विश्लेषण करता है। पश्चिम की इस अंधी नकल करने की प्रवृत्ति ने भारतीयों को अपने ही घर में, अपने ही देश में बेगाना बना दिया था। मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने पश्चिमी सभ्यता के दीवानों, इन तथाकथित मुहज़्ज़ब (सभ्य) भारतीयों पर कटाक्ष करते हुए कहा था -

हुए इस क़दर मुहज़्ज़ब, कभी घर का मुहँ न देखा।
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर।।

रबीन्द्र नाथ टैगोर के उपन्यास गोरा का नायक अपनी भारतीयता पर गर्व करता है और पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले शिक्षित भारतीयों की भर्त्सना करता है। तमिल के महान राष्ट्रवादी कवि सुब्रमण्य भारती ने अपनी देशभक्तिपूर्ण काव्य रचनाओं से उग्र राष्ट्रवाद के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था।

3.4 भारत में उग्र राजनीतिक विचारधारा का विकास

3.4.1 नरमपंथियों की नीतियों के प्रति आक्रोश

उच्च मध्यम वर्ग के पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त कांग्रेस के नरमदलीय नेता स्वयं को स्वामिभक्त देशभक्त कहलाना पसन्द करते थे। उत्तरदायी सरकार की स्थापना की दिशा में अपने लक्ष्य को वे संवैधानिक साधनों के माध्यम से ही प्राप्त करना चाहते थे। कांग्रेस की गतिविधियां किसी भी तरह जन-आन्दोलन से जुड़ी हुई नहीं थी। इसी कारण अपनी स्थापना के पहले बीस सालों में कांग्रेस सरकार को वांछित सुधार करने के लिए विवश नहीं कर पाई। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या में वृद्धि, अकालों की पुनरावृत्ति, प्लेग जैसी महामारी का प्रकोप और उससे निपटने में सरकार की नाकामी, महंगाई की मार और ग्रामीण व शहरी जनता के असन्तोष का कठोरतापूर्वक दमन करने की सरकार की नीति ने उग्र विचारधारा रखने वालों को सरकार से नाराज़ और कांग्रेस से विमुख कर दिया था। औपनिवेशिक सरकार के सुधार करने के खोखले वादों पर भरोसा करने वाले नरमपंथियों के प्रति उग्रवादी विचारधारा के

नवयुवकों में आक्रोश बढ़ता जा रहा था। इंग्लैण्ड के इतिहास और पाश्चात्य संस्कृति के प्रति नरमपंथियों की श्रद्धा रखने की प्रवृत्ति भी उग्रवादियों को स्वीकार्य नहीं थी। उग्रवादी नरमपंथियों की भांति औपनिवेशिक सरकार को भारत में शान्ति, व्यवस्था स्थापित करने, उसका एकीकरण करने का और उसका आधुनिकीकरण करने का श्रेय नहीं देते थे। गरमदलीय वर्ग सरकार के समक्ष नरमपंथियों के भिक्षुक के समान व्यवहार, उनके पश्चिमोन्मुख आचार-विचार और आम जनता से उनकी दूरी की कटु आलोचना करने लगा था। इटली पर अबीसीनिया की विजय और रूस पर जापान की विजय ने यूरोपीय अपराजेयता के मिथक को तोड़ दिया था। आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन ने स्वशासन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार पर आर्थिक बहिष्कार कर दबाव डालने की नीति अपनाने के लिए प्रेरित किया था। स्वदेशी की प्रतिध्वनि श्रीमती एनीबीसेन्ट के विचारों में सुनाई पड़ती है। सन् 1903 में उन्होंने लिखा -

भारत का शासन भारतीयों की भावनाओं, परम्पराओं, विचारों और सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

3.4.2 लोकमान्य तिलक

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में राष्ट्रवाद का नैतिक आधार अपने ही देश के इतिहास, धर्म और संस्थाओं में खोजा जा रहा था। उग्रवादी राजनीतिक दासता से भी बड़ा अभिशाप मानसिक दासता को मानते थे। सदियों तक गुलाम रहे भारतीयों की दासता की प्रवृत्ति को तथा राष्ट्रीय चरित्र को बदलने की आवश्यकता थी। लोकमान्य तिलक ने हिन्दू पुनरुत्थान, व्यापक जन-सम्पर्क और सीधी कार्रवाही पर ज़ोर दिया। लोकमान्य तिलक औपनिवेशिक शासन के शोषक एवं दमनकारी स्वरूप की एक-एक रग से वाकिफ़ थे। उन्हें अंग्रेज़ों से राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक अथवा किसी भी प्रकार के सुधार की कोई अपेक्षा नहीं थी। अपने अंग्रेज़ी पत्र मराठा तथा मराठी भाषा के पत्र केसरी में उन्होंने सरकार की राजनीतिक, प्रशासनिक, शैक्षिक एवं आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था। लोकमान्य ने स्वदेशी की महत्ता का व्यापक प्रचार किया था। केसरी में लोकमान्य ने लिखा था -

वास्तव में स्वदेशी एक विस्तृत विषय है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक और आर्थिक, वो सभी मुद्दे आते हैं जिनके आधार पर कोई देश विकसित और सभ्य देशों की श्रेणी में आता है। यदि कोई व्यक्ति इमानदारी के साथ स्वदेशी है तो वह हर क्षेत्र में स्वदेशी के चलन के लिए प्रयास करेगा अन्यथा वह झूठा और ढोंगी स्वदेशी है।

लोकमान्य तिलक ने भीख मांगने के स्थान पर लड़कर अपना अधिकार लेने की रणनीति अपनाने के लिए कांग्रेस पर दबाव डाला और कांग्रेस को शिक्षित शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक दल से उसे आम भारतीय जनता का दल बनने की सलाह दी। लोकमान्य द्वारा कांग्रेस की कागज़ी कार्यवाही करने की नीति की आलोचना की गई। कांग्रेस के त्रि-दिवसीय अधिवेशनों में

बड़ी-बड़ी मांगे रखने के बाद शेष समय चुपचाप बैठ जाने की उसके नेताओं की दुर्बलता की भी उन्होंने आलोचना की।

लोकमान्य ने ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा समाज सुधार के नाम पर भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोध किया। उन्होंने 1891 के 'एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल' का विरोध किया। महाराष्ट्र में राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान कराने वाले जो तत्व सहायक बने वे थे - 'गणपति महोत्सव' तथा 'शिवाजी महोत्सव' की शुरूआत। लोकमान्य तिलक के गणपति तथा शिवाजी महोत्सवों के प्रारम्भ के पीछे जो प्रेरणा काम कर रही थी वह थी - अपने परंपरागत आदर्श चरित्रों का गुणगान कर उनसे शक्ति अर्जित करना तथा उनके सत्कार्यों को देश की तात्कालिक मांगों के अनुरूप प्रासंगिक ठहराना। गणेशोत्सव के बहाने लोकमान्य ने सभी वर्गों व सभी समुदायों को छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष आदि का भेद मिटाकर एक मंच पर एकत्र कर उन्हें सामाजिक समता व एकता का सन्देश दिया और धीरे-धीरे इसके माध्यम से उन्होंने राजनीतिक एकता का प्रचार-प्रसार किया। अपने धार्मिक मूल्यों और अपनी सांस्कृतिक धरोहर के पुनरुत्थान हेतु गणेशोत्सव का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है।

1894 में लोकमान्य द्वारा रायगढ़ के किले में पहला शिवाजी-उत्सव मनाया गया। शिवाजी उत्सव का लक्ष्य शिवाजी के 'स्वराज' प्राप्ति के लक्ष्य को फिर से हासिल करना था। शिवाजी उत्सव में लोकमान्य तिलक ने भारतीय युवाओं का आवाहन किया कि वो स्वस्थ बनें, स्फूर्तिवान बनें, साहसी बनें और अन्याय का प्रतिकार करने में सक्षम बनें।

महाराष्ट्र में प्लेग कमिश्नर रैण्ड द्वारा प्लेग से निपटने के लिए जो उपाय अपनाए उनसे जनता को बहुत परेशानी हुई। 15 जून, 1897 को अपने पत्र केसरी में लोकमान्य तिलक ने शिवाजी द्वारा अफ़ज़ल खां की हत्या का उल्लेख करते हुए अन्यायी का वध करना उचित ठहराया था। ठीक सात दिन बाद चापेकर बंधुओं ने रैण्ड की हत्या कर दी। तिलक पर हिंसा भड़काने वाला लेख लिखने का आरोप लगाया गया और उन्हें 18 महीने का सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। जेल से छूटने के बाद लोकमान्य ने अपना नारा दिया -

स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं इसे लेकर रहूंगा।

लोकमान्य तिलक ने बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को केवल बंगाल के लिए नहीं अपितु समस्त भारत के लिए दुर्भायपूर्ण बताया। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ बॉम्बे प्रेसीडेन्सी में अनेक स्थानों पर बहिष्कार के समर्थन में जन-सभाओं का आयोजन किया। बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने और स्वराज्य प्राप्ति व आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। राष्ट्रीय एकीकरण भी स्वदेशी आन्दोलन का एक प्रमुख लक्ष्य था।

कांग्रेस ने 1905 के अधिवेशन में ब्रिटिश कपड़ों के बहिष्कार हेतु प्रस्ताव पारित किया गया। 1906 से पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का कोई लिखित संविधान नहीं था और न ही उसका कोई

घोषित लक्ष्य था। उग्रवादियों के दबाव में आकर 1906 में कांग्रेस को अपना लोकतान्त्रिक संविधान तैयार करना पड़ा और स्वराज अथवा स्वशासन को अपना लक्ष्य घोषित करना पड़ा।

उग्रवादियों ने जब बॉयकाट व शान्तिपूर्ण विरोध करने पर ज़ोर दिया तो नरमपंथियों के एक वर्ग ने उन्हें कांग्रेस से बाहर निकालने का फ़ैसला कर लिया। इन परिस्थितियों में दिसम्बर, 1907 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस का नरमदल और गरमदल में विभाजन हुआ।

3.4.3 लाला लाजपत राय

शिवाजी, दयानन्द सरस्वती, मेज़िनी और गैरीबाल्डी के विचारों तथा उनके कार्यों से प्रभावित लाला लाजपतराय 'बाल-लाल-पाल' त्रिमूर्ति के दूसरे स्तम्भ थे। लालाजी आर्यसमाज के सक्रिय सदस्य थे। लोकमान्य तिलक की ही भांति लालाजी नरमपंथी कांग्रेसियों की याचक प्रवृत्ति से नाराज़ थे -

भीख मांगने या प्रार्थना करने से आज़ादी हासिल नहीं हो सकती। इसे केवल तुम संघर्ष करके और बलिदान देकर अर्जित कर सकते हो।'

लाला लाजपत राय ने लाहौर से पंजाबी, वन्दे मातरम् तथा पीपुल का प्रकाशन किया। लालाजी ने कांग्रेस की स्थापना से लेकर अगले बीस सालों तक नरम दल की उपलब्धियों का आकलन करते हुए अपने पत्र में लिखा था-

बीस साल तक रियायतों की मांग तथा देशवासियों के दु:खों को दूर करने के असफल संघर्ष करने के बाद इन्हें रोटी के बदले पत्थर ही प्राप्त हुए।

सन् 1907 में 'लाहौर इण्डियन एसोसियेशन' के नेताओं लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीत सिंह के नेतृत्व में सरकार के किसान विरोधी निर्णयों के विरुद्ध जन-सभाएं आयोजित की गईं तथा किसानों को लगान न देने के लिए कहा गया। लाला लाजपत राय को अशान्ति फैलाने आरोप में अल्पावधि के लिए माण्डले निर्वासित कर दिया गया। माण्डले के निर्वासन से वापस आने के बाद गरम दल ने लाला लाजपत राय का नाम कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में अध्यक्ष पद हेतु प्रस्तावित किया और नरमपंथियों ने रास बिहारी घोष का नाम अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित किया। लाला लाजपत राय ने विवाद से बचने के लिए अध्यक्ष पद हेतु अपना नाम प्रस्तावित नहीं होने दिया किन्तु वह नरमदल व गरमदल के बीच की खाई को पाटने में और कांग्रेस के विभाजन को रोकने में सफल नहीं हो सके।

3.4.4 बिपिन चन्द्र पाल

'बाल-लाल-पाल' त्रिमूर्ति के तीसरे स्तम्भ बिपिन चन्द्र पाल ने बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद की अलख जलाई थी। बिपिन चंद्र पाल बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की राष्ट्रवादी विचारधारा के अनुयायी थे। उन्होंने अंग्रेज़ी में न्यू इण्डिया साप्ताहिक तथा बंगला में अरबिंदो घोष के साथ बन्देमातरम् का प्रकाशन किया । लोकमान्य तिलक की ही भांति उन्हें नरमदल की सुधारों के लिए भिक्षा मांगने का तरीका पसन्द नहीं था, वह उग्र-राष्ट्रवाद के समर्थक थे। बंगाल विभाजन के विरोध में हुए स्वदेशी आंदोलन में उनकी अग्रणी भूमिका थी। बंगाल विभाजन के विरुद्ध

स्वदेशी आन्दोलन में बिपिन चन्द्र पाल ने बॉयकाट कर सरकार पर अपने निर्णय को बदलने के लिए दबाव डालने की नीति को उचित ठहराया था। 1907 में कांग्रेस का विभाजन हो गया, नरमदल से वैचारिक मतभेदों के कारण उन्होने लोकमान्य तिलक व लाला लाजपतराय के साथ गरमदल बनाया। उनकी उग्रवादी नीतियों के कारण उन पर 1907 में राजद्रोह का अभियोग लगा और फिर उन्हें जेल भेज दिया गया।

बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो घोष तथा ब्रह्मबान्धब उपाध्याय भारतीयों की मुक्ति में ही भारतीय राष्ट्रीय जीवन के पुनर्निर्माण की सम्भावना देखते थे। 1907 में उग्रवादियों के विरुद्ध सरकार का दमन चक्र देखते हुए लाला लाजपत राय तथा बिपिन चन्द्र पाल इंग्लैण्ड चले गए। लन्दन में बिपिन चन्द्र पाल ने स्वराज पत्र का प्रकाशन किया और वह इण्डिया हाउस जैसी उग्रवादी संस्था से भी सम्बद्ध रहे।

3.4.5 अरबिन्दो घोष

बिंकम चन्द्र, दयानन्द सरस्वती और लोकमान्य तिलक के प्रशंसक अरबिन्दो घोष भारत की पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता के विचार का विकास करने वाले पहले चिन्तक कहे जा सकते हैं। अरबिन्दो ने 1893-94 में बम्बई से प्रकाशित पत्र इन्दु प्रकाश में कांग्रेस की अनुनय-विनय करने की प्रवृत्ति की भर्त्सना की थी। उन्होंने नरमपंथी नेताओं को कायर, भविष्य-निरूपणता तथा उत्साह से हीन और नितान्त असफल बताया था। अरबिन्दो इंग्लैण्ड की राजनीतिक व्यवस्था को अपना आदर्श नहीं मानते थे। वे फ्रांस, अमेरिका, इटली और आयरलैण्ड की क्रान्तियों और उनमें निहित आदर्शों से प्रेरणा लेते थे। उन्होंने राष्ट्रवाद को धर्म से जोड़ा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में अरबिन्दो घोष ने भारतीय पुनरुत्थानवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। स्वदेशी की भावना उनके जीवन का आधार थी। उनका मानना था कि भारत को किसी बाह्य शक्ति ने नहीं जीता है बल्कि वह स्वयं अपनी दुर्बलता से हारा है। बंकिम का महामन्त्र 'वन्दे मातरम्' उनके जीवन का लक्ष्य था, स्वदेशी की भावना उनके जीवन का आधार थी और स्वतन्त्रता उसकी चरम परिणति।

3.4.1.5 अन्य उग्रवादी नेता

लोकमान्य तिलक के अनुयायी वी0 ओ0 चिदम्बरम पिल्लई ने मद्रास प्रेसीडेन्सी में उग्र राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1908 में उन्हें अपने उग्र राजनीतिक विचारों के कारण आजन्म कारावास मिला परन्तु बाद में उन्हें 1912 में रिहा कर दिया गया। उनके सहयोगियों में सुब्रमण्य सिवा, काची वरथा चारियार व राष्ट्रवादी तमिल कवि सुब्रमण्य भारती सम्मिलित थे। सुब्रमण्य भारती लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। उन्होंने कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में भाग लिया था। ब्रिटिश भारतीय सरकार के कोप से बचने के लिए वह फ्रांसीसियों के अधीन पॉण्डिचेरी चले गए। पॉण्डिचेरी में सुब्रमण्य भारती तमिल पत्रों स्वदेश मित्रन तथा इण्डिया और अंग्रेज़ी पत्र बाल भारतम् से सम्बद्ध रहे और वहां उन्होंने अरबिन्दो घोष को आर्य तथा कर्मयोगी

पत्रों के प्रकाशन में सहयोग दिया। अपनी देशभक्तिपूर्ण रचनाओं के लिए भारती को राष्ट्रकवि कहा जाता है।

3.5 उग्रवाद की असफलताओं और उसकी उपलब्धियों का आकलन

3.5.1 सरकार द्वारा उग्रवाद का दमन

कांग्रेस के विभाजन के बाद उग्रवादियों के विरुद्ध ब्रिटिश भारतीय सरकार ने कठोर कदम उठाए। 1908 में खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी द्वारा जज किंग्सफ़ोर्ड को बम से उड़ाने के प्रयास को अपने पत्र केसरी में लोकमान्य ने उचित ठहराया। अदालत में लोकमान्य पर हिंसात्मक व आतंकवादी गतिविधियों को उचित ठहराने व उनको प्रोत्साहित करने का आरोप लगा और उन्हें छह वर्ष का कारावास देकर माण्डले निष्कासित कर दिया गया।

पंजाब सरकार के किसान विरोधी निर्णयों के विरुद्ध सन् 1907 में 'लाहौर इण्डियन एसोसियेशन' के नेताओं लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीत सिंह ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। लाला लाजपत राय को अशान्ति फैलाने आरोप में अल्पावधि के लिए माण्डले निर्वासित कर दिया गया। सरकार के प्रकोप से बचने के लिए लाला लाजपत राय और बिपिन चन्द्र पाल को 1907 के बाद अपना अधिकांश समय भारत से बाहर व्यतीत करना पड़ा।

खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी द्वारा जज किंग्सफ़ोर्ड पर हमले को अलीपुर षडयन्त्र कहा गया और अरबिन्दो घोष पर इसमें शामिल होने का आरोप लगा। अरबिन्दो इस आरोप से एक साल बाद बरी हो गए किन्तु तब तक उन्हें कारावास में रहना पड़ा।

सरकार ने अपने विरुद्ध किसी भी प्रकार की सामग्री प्रकाशित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1910 के प्रेस एक्ट के अन्तर्गत 200 प्रिन्टिग प्रेस और 130 पत्र बन्द किए गए तथा 400 प्रकाशनों पर जुर्माना किया गया।

3.5.2 उग्रवाद का स्वत: शिथिल पड़ना

लोकमान्य तिलक तथा अन्य शीर्षस्थ उग्रवादी नेताओं की भारतीय राजनीतिक मंच से अनुपस्थिति के कारण उग्रवादी आन्दोलन का शिथिल पड़ना स्वाभाविक था। सरकार तथा नरमपंथियों द्वारा उनपर आतंकवाद को पोषण देने के आरोप से उनके राजनीतिक दबदबे में फ़र्क पड़ा था। स्वयं प्रमुख उग्रवादी नेताओं को भी अब क्रान्तिकारी आन्दोलन के औचित्य पर आशंका होने लगी थी। उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद से भी वो दूर होते जा रहे थे। माण्डले से 1914 में लौटकर लोकमान्य हिन्दू-मुस्लिम एकता को महत्व देने लगे थे। लाला लाजपत राय समाजवादी विचारधारा की ओर उन्मुख होने लगे थे। बिपिन चन्द्र पाल और अरबिन्दो घोष अपने राष्ट्रवादी चिन्तन को विस्तार देकर समस्त मानव जाति के कल्याण के प्रति समर्पित हो गए थे।

अलीपुर षडयन्त्र के सिलसिले में अरबिन्दो 1908 से 1909 तक जेल में रहे थे। भारतवासियों में लगभग तीन सालों तक राजनीतिक आन्दोलन करते रहने के बाद उसको और आगे तक ले जाने का उत्साह बाकी नहीं रहा था। अरबिन्दो ने इस बारे में अपने अनुभव लिखे थे -

मैं जब मैं जेल गया था तो अपनी अवनति के बाद एक बार फिर से उठ खड़े हुए करोड़ों भारतीय राष्ट्र के निर्माण की आशा में 'बन्दे मातरम्' का उद्घोष कर रहे थे किन्तु जब मैं जेल से छूटकर बाहर आया और मैंने 'बन्दे मातरम् का वही उद्घोष सुनना चाहा तो मुझे चारों ओर सन्नाटा मिला।

3.5.3 उग्रवादी आन्दोलन की असफलताएं

1. उग्रवादी आन्दोलन मूलतः उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद था। भारत जैसे विभिन्न धर्मों और जातियों के देश में गणेशोत्सव को राजनीतिक महत्व देना, मातृभूमि भारत को भारतमाता की प्रतिष्ठा देना, महाराणा प्रताप, महाराणा राजसिंह और छत्रपति शिवाजी जैसे हिन्दू शासकों को महानायक के रूप में प्रस्तुत करना, वेद, पुराण संस्कृत भाषा, देवनागरी लिपि को अत्यधिक सम्मान देना, हिन्दू पुनरुत्थानवादी आन्दोलन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहना आदि ऐसी बातें थीं जो उनके आन्दोलन को संकुचित और संकीर्ण बनाती थीं।
2. उग्रवादियों की विचारधारा से नरमपंथी सहमत नहीं थे क्योंकि उनकी दृष्टि में उग्रवादी राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जल्दबाज़ी कर रहे थे। सरकार उनकी विचारधारा को आतंकवाद से जोड़ रही थी।
3. मुसलमान उग्रवादियों की विचारधारा को मुस्लिम विरोधी मानते थे। मुसलमानों ने 1906 में अपने हितों की रक्षार्थ मुस्लिम लीग की स्थापना की। 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को और भी हवा दी गई। उग्रवादी आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो कम से कम अप्रत्यक्ष रूप से भारत के विभाजन के लिए ज़िम्मेदार कहा जा सकता है।
4. भारत में और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में परिस्थितियां बदलती जा रही थीं। 1911 में बंगाल विभाजन के रद्द किए जाने के बाद उग्रवादी आन्दोलन की उपादेयता लगभग समाप्त हो गई थी। 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने के उपरान्त सरकार के साथ सहयोग कर उससे राजनीतिक व आर्थिक सुधार प्राप्त करने का यह अनुकूल समय था। स्वयं लोकमान्य तिलक ने भी इस बात को समझ कर अपनी उग्रवादी विचारधारा का परित्याग कर 1916 में अपना शान्तिपूर्ण होमरूल आन्दोलन प्रारम्भ किया था।

3.5.4 उग्रवादी आन्दोलन की उपलब्धियां

1. उग्रवादियों ने कांग्रेस के शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय राजनीतिक आन्दोलन को जन-साधारण तक पहुंचाया था। लोकमान्य तिलक को हम भारतीय राजनीति का पहला जन-नायक कह सकते हैं। अब कांग्रेस के सदस्यों की संख्या सैकड़ों और हज़ारों में नहीं बल्कि लाखों में पहुंच गई थी और उसमें महानगर, छोटे शहर, कस्बे, यहां तक कि गांव की जनता भी सम्मिलित थी।
2. स्वशासन, स्वराज और स्वदेशी को अपना राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक लक्ष्य बनाकर उग्रवादियों ने भारतीयों की हीन भावना को कम करने में सफलता प्राप्त की थी।

आने वाले समय में गोपाल कृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरु मानने वाले महात्मा गांधी ने उग्रवादियों की सक्रिय राजनीतिक विरोध की शैली अपनाई और स्वशासन, स्वराज और स्वदेशी को अपना राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक लक्ष्य बनाया।

3. बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को रद्द कराने का श्रेय काफ़ी हद तक उग्रवादियों को दिया जा सकता है।
4. उग्रवादी साहित्य व पत्रकारिता ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना जागृत करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की थी। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो आदि उग्रवादियों ने प्रतिबद्ध पत्रकारिता की एक नई मिसाल कायम की थी।
5. उग्रवादियों ने राष्ट्रीय शिक्षा के विकास में योगदान दिया। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान अरबिन्दो घोष और स्वामी श्रद्धानन्द ने प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति के श्रेष्ठ तत्वों को आधुनिक शिक्षा-पद्धति में समाहित किया।
6. उग्रवादियों द्वारा उठाई गई स्वशासन की मांग को पूरी तरह से नकारना अब सरकार के भी बस में नहीं था। 1917 में मॉन्टेग्यू की घोषणा द्वारा सरकार ने सैद्धान्तिक रूप से भारतीयों को स्वशासन प्रदान करना स्वीकार कर लिया था।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पुनरुत्थानवादी आन्दोलन में उग्र राष्ट्रवाद के तत्वों की समीक्षा कीजिए।
2. उग्र राष्ट्रवादियों द्वारा सरकार की दमनकारी नीतियों की निर्भीक आलोचना पर प्रकाश डालिए।
3. 1907 में कांग्रेस के विभाजन के क्या कारण थे?

3.6 सारांश

वेदों, पुराणों तथा साहित्य में अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। मध्यकाल में मुस्लिम आधिपत्य-काल में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास हुआ। एशियाटिक सोसायटी तथा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफ़िकल सोसायटी आदि पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों व बंकिम चन्द्र, एच0 एन0 आप्टे जैसे साहित्यकारों ने भारत में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उग्र राष्ट्रवाद के विकास में अपना योगदान दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वराज और स्वदेशी की महत्ता को दर्शाया।

लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो घोष आदि उग्रवादियों ने भारतीयों को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए भीख मांगने के स्थान पर लड़ना सिखाया। उग्रवादी भारतीय धर्म, संस्कृति और उसके गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने के पक्षधर

थे। उग्रवादियों ने स्वराज, स्वशासन तथा स्वदेशी को अपना राजनीतिक लक्ष्य बनाया तथा राजनीतिक आन्दोलन में आम आदमी की सहभागिता को महत्ता दी। लोकमान्य तिलक ने गणेशोत्सव के बहाने सभी वर्गों व सभी समुदायों को छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष आदि का भेद मिटाकर एक मंच पर एकत्र कर उन्हें सामाजिक समता व एकता का सन्देश दिया और धीरे-धीरे इसके माध्यम से उन्होंने राजनीतिक एकता का प्रचार-प्रसार किया। उनके द्वारा आयोजित शिवाजी उत्सव का लक्ष्य शिवाजी के 'स्वराज' प्राप्ति के लक्ष्य को फिर से हासिल करना था।

बंगाल विभाजन के विरुद्ध उग्रवादियों ने सक्रिय राजनीतिक विरोध का मार्ग अपनाया। स्वशासन, स्वराज्य व स्वदेशी को इस आन्दोलन में लक्ष्य बनाया गया। अरबिन्दो घोष राष्ट्रीय शिक्षा के विकास से सम्बद्ध रहे। 1907 में नरमपंथियों व उग्रवादियों में मतभेद बढ़ जाने के कारण कांग्रेस का विभाजन हो गया। सरकार ने उग्रवादियों के दमन हेतु कठोर कदम उठाए। 1908 के बाद उग्रवादी आन्दोलन शान्त पड़ गया किन्तु उग्रवादियों के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को आने वाले समय में राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बना लिया गया।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

मरहट्टन - मराठे

मुहज़्ज़ब - सभ्य

बॉयकाट - बहिष्कार

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.3.3.2 आर्य समाज, 3.3.3.3 स्वामी विवेकानन्द और आर्य समाज तथा 3.3.3.4 थियोसोफ़िकल सोसायटी
2. देखिए 3.4 भारत में उग्र राजनीतिक विचारधारा का विकास
3. देखिए 3.4.1 लोकमान्य तिलक तथा 3.4.1.2 लाला लाजपत राय

3.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, (भाग 1 व 2), बम्बई, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

घोष, पी0 सी0 - दि डवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1960

सीतारमैया, पी0 - दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1946

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय आन्दोलन में लोकमान्य तिलक के योगदान का आकलन कीजिए।
2. उग्रवादी आन्दोलन की असफलताओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई चार

बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद और बंगाल का विभाजन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 बंगाल में उग्र राष्ट्रवादी भावना का विकास

4.3.1 मध्यकालीन बंगाल में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

4.3.2 उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में राष्ट्रवादी भावना का विकास

4.4 लॉर्ड कर्ज़न का दमनकारी शासन तथा बंगाल विभाजन का निर्णय

4.4.1 भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रति लॉर्ड कर्ज़न का दृष्टिकोण तथा बंगाल विभाजन से पूर्व उसके बंगाल-विरोधी विचार तथा कार्य

4.4.2 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका क्रियान्वयन

4.5 बंगाल विभाजन का विरोध

4.5.1 विभिन्न समुदायों, संगठनों तथा पत्रों द्वारा बंगाल विभाजन का विरोध

4.5.2 स्वदेशी आन्दोलन

4.5.2.1 बहिष्कार

4.5.2.2 स्वदेशी का सकारात्मक रूप

4.5.2.2.1 आर्थिक आत्मनिर्भरता

4.5.2.2.2 ग्राम स्वराज्य

4.5.2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा

4.5.2.2.4 राष्ट्रीय एकता

4.5.2.2.5 स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज अथवा स्वशासन

4.5.3 क्रान्तिकारी आतंकवाद

4.6.1 बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना

4.6.2 भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद का आकलन

4.6.2.1 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की सीमाएं

4.6.2.2 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की उपलब्धियां

4.7 सारांश

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीयों की बढ़ती हुई राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की तुलना में ब्रिटिश सरकार की सुधार की गति अत्यन्त धीमी थी। इसके कारण भारतीयों में असन्तोष की भावना बढ़ी। सरकार के प्रति भारतीयों के बढ़ते असन्तोष को देखते हुए सरकार ने अपना सुधारवादी मुखौटा उतारकर राजनीतिक दमन की नीति अपनाना प्रारम्भ कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद का विकास होने लगा था। राजनारायण बोस, नबगोपाल मित्र तथा बंकिम चन्द्र ने उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। भारत में लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित किए जाने का विरोधी लॉर्ड कर्ज़न जब 1899 में भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया तो उसने बंगाल में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना का दमन करने तथा साम्प्रदायिक विघटन के उद्देश्य से 1905 में बंगाल विभाजन का निर्णय लिया।

इस इकाई में आपको बताया जाएगा कि बंगाल विभाजन के विरोध में किए गए स्वदेशी आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य क्या-क्या थे और उन्हें हासिल करने के लिए आन्दोलनकारियों ने अपनी क्या रणनीति रखी थी। इस इकाई में आपको बंगाल विभाजन के विरोध में क्रान्तिकारी आतंकवाद के विकास से भी अवगत कराया जाएगा। आपको यह भी बताया जाएगा कि स्वदेशी आन्दोलन व क्रान्तिकारी आतंकवाद के कारण किस प्रकार सरकार को अपना दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय बदलने के लिए बाध्य होना पड़ा था। इस इकाई में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन व क्रान्तिकारी आतंकवाद के योगदान का आकलन भी किया जाएगा।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की की अवधि में बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद के विकास तथा लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल में बंगाल विभाजन के निर्णय की पृष्ठभूमि तथा उसके कार्यान्वयन से आपको परिचित कराना है। बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन के रूप में पहली बार अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन के दोनों पक्षों - सकारात्मक तथा निषेधात्मक के विकास की जानकारी देना भी इस इकाई का उद्देश्य है। इस इकाई में बंगाल विभाजन के विरोध में हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों की चर्चा भी की जाएगी। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. बंगाल विभाजन के निर्णय के सरकारी स्पष्टीकरण के पीछे छिपे हुए षडयन्त्र के विषय में।
2. बंगाल विभाजन के विरोध में किए गए स्वदेशी आन्दोलन के निषेधात्मक तथा सकारात्मक पक्ष के विषय में।
3. बंगाल विभाजन के विरोध में की गई क्रान्तिकारी गतिविधियों के विषय में।
4. बंगाल विभाजन के निर्णय को रद्द किए जाने के विषय में।
5. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद के योगदान के विषय में।

4.3 बंगाल में उग्र राष्ट्रवादी भावना का विकास

4.3.1 मध्यकालीन बंगाल में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

मध्यकालीन बंगाल के इतिहास में पाल शासकों - धर्मपाल और देवपाल के शासनकाल को मध्यकालीन बंगाल का स्वर्ण युग कहा जा सकता है किन्तु बाद में तुर्क आक्रमणों ने बंगाल की स्वतन्त्रता पर ग्रहण लगा दिया। मुगल बादशाह अकबर और जहांगीर के समकालीन देवी काली 'जसोहरेश्वरी' के भक्त, जैसोर के शासक महाराज प्रतापादित्य ने अपनी मातृभूमि को विदेशी मुगलों के चंगुल से मुक्त कराकर बंगाल में एक स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का प्रयास किया था। बर्दवान के शासक राजा सीताराम राय ने भी हिन्दुओं के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रयास किया था।

4.3.2 उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में राष्ट्रवादी भावना का विकास

राजा राममोहन राय के पत्र सम्बाद कौमुदी में पहली बार जनता की शिकायतों का प्रकाशन हुआ। डेरोज़ियो के 'यंग बैंगाल आन्दोलन' ने स्वतन्त्रता, समानता तथा देशभक्ति की भावना के प्रसार में योगदान दिया। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र बैंगाल हरकारा के 1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई थी।

राजनारायण बोस ने 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' की स्थापना की थी। इनसे प्रेरणा लेकर 1867 में नबगोपाल मित्र ने 'हिन्दू मेला' की स्थापना की जिसका कि उद्देश्य देश की प्रगति हेतु भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य निर्माण आदि का विकास करना था। हिन्दू मेले द्वारा भारतीय उत्पादों की प्रदर्शनी का नियमित आयोजन सराहनीय प्रयास था। नबगोपाल मित्र ने 'नेशनल स्कूल', 'नेशनल जिमनेज़ियम', 'नेशनल थियेटर' तथा 'नेशनल सर्कस' की स्थापना भी की थी।

रंगलाल बैनर्जी (1826-1886) - ने अपनी काव्य रचनाओं पद्मिनी, कर्मादेवी तथा सुर सुन्दरी के द्वारा बंगवासियों में देशभक्तिपूर्ण भावना का संचार किया। कर्मादेवी में कवि रंगलाल ने बंगाल के बालकों तथा नवयुवकों में पुरुषोचित गुणों का विकास देखने की कामना की थी।

बंकिम चन्द्र ने अपने उपन्यास दुर्गेश नन्दिनी में मुगलों तथा पठानों के विरुद्ध हिन्दू प्रतिरोध का वर्णन किया। अपने अमर उपन्यास आनन्द मठ में बंकिम ने 1773 में उत्तर बंगाल में हुए 'सन्तान विद्रोह' की गाथा को धार्मिक एवं राजनीतिक कलेवर प्रदान किया था। भगवद् गीता के निष्काम कर्म के सिद्धान्त से प्रेरित उनके मुख्य पात्र निःस्वार्थ भाव से देशभक्त हैं और दुष्ट-दमन के लिए कटिबद्ध हैं। 'सन्तान' अंग्रेज़ों की अदम्य शक्ति की चिन्ता न करते हुए उनसे अनवरत संघर्ष करते रहते हैं। बंकिम ने इस उपन्यास में अन्याय का साहसपूर्वक प्रतिकार करने का सन्देश दिया है। यह उपन्यास विभिन्न धार्मिक, देशभक्तिपूर्ण एवं राष्ट्रीय गतिविधियों का प्रेरणा स्रोत बना। 'वन्दे मातरम् गीत' इसी उपन्यास का अंग है। इस राष्ट्रगान में बंगाल की हरी-भरी धरती की शोभा का गुणगान किया गया है और ऐसी सुखदायिनी मातृभूमि का मानवीकरण करके उसे माँ के रूप में प्रतिष्ठित कर उसको विद्या, धर्म, कर्म, प्राण तथा शक्ति का आधार और शत्रुओं का

विनाश करने वाली बताया गया है। मातृ सम्प्रदाय के अनुयायी शान्ति, भवानन्द और जीवानन्द - बेड़ियों में जकड़ी, बिखरे केश लिए, श्रृंगार विहीन, मलिन वस्त्र धारी, अपमानित होती हुई भारतमाता को आततायी विदेशी आक्रान्ता के चंगुल से छुड़ाने का संकल्प लेते हैं। बंगाल के सात करोड़ निवासियों के कण्ठों से मातृभूमि की वन्दना और उनकी चौदह करोड़ भुजाओं में उसकी रक्षा हेतु शस्त्र धारण करने की कामना करोड़ों देशवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार करने में सफल रही -

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्।
शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसमित द्रुम दल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्। वन्दे मातरम्।

1903 में टैगोर परिवार की प्रसिद्ध लेखिका सरला देवी ने भवानीपुर में डॉन के सम्पादक सतीश कुमार मुखर्जी के सहयोग से लोकमान्य के शिवाजी उत्सव से प्रेरित होकर मध्यकालीन बंगाल में स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करने वाले जसोहर के महाराज प्रतापादित्य की स्मृति में 'प्रतापादित्य उत्सव' की अध्यक्षता की।

4.4 लॉर्ड कर्ज़न का दमनकारी शासन तथा बंगाल विभाजन का निर्णय

4.4.1 भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रति लॉर्ड कर्ज़न का दृष्टिकोण तथा बंगाल विभाजन से पूर्व उसके बंगाल-विरोधी विचार तथा कार्य

लॉर्ड कर्ज़न को तथाकथित 'अपवित्र चीज़' कांग्रेस द्वारा सरकार की कटु आलोचना स्वीकार्य नहीं थी। उसकी दृष्टि में भारतीयों की नियति तथा उनका कर्तव्य शासित होना था और जो भारतीय इसके विपरीत अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाते थे वो उसके अनुसार मर्यादा की लक्ष्मण रेखा को पार करने की भूल करते थे। अपने शासनकाल के पहले ही साल में बंगाल में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना से सशंकित लॉर्ड कर्ज़न ने 1899 में कलकत्ता नगर महापालिका में सरकारी नियन्त्रण बढ़ाने के उद्देश्य से उसके निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम कर दी। कलकत्ते के यूरोपियन व्यापारिक समुदाय के हितों की रक्षा के लिए 1904 के यूनीवर्सिटी एक्ट द्वारा उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वायत्त-शासित ढांचे के बदल कर उसके सेनेट में सरकारी नियन्त्रण बढ़ा दिया। 1905 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दिया गया उसका भाषण भारतीयों के प्रति उसकी घृणा और उनको नीचा दिखाने की उसकी प्रवृत्ति का खुलासा करता है -

मेरे विचार से ऐसा कहना कि सत्य का सर्वोच्च आदर्श काफ़ी हद तक पाश्चात्य अवधारणा है, यह न तो न तो कोई झूठा दावा है और न ही घमण्ड भरा।

4.4.2 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका क्रियान्वयन

बंगाल प्रान्त भारत का सबसे बड़ा प्रान्त था। 1864 में इससे सिलहट तथा आसाम को अलग करने पर विचार किया गया था तथा 1896-97 में चिटगांव कमिश्नरी, ढाका तथा मैमनसिंह को आसाम में मिलाने का सुझाव दिया था। बंगाल के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर एन्ड्रू फ्रेज़र ने मार्च 1903 में देश के क्षेत्रीय विभाजन का एक प्रस्ताव भेजा था जिसे गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने जून, 1903 में स्वीकार कर लिया था। दिसम्बर 1903 में गृह सचिव एच0 एच0 रिज़ले ने अपने पत्र में बंगाल प्रान्त के बटवारे का समर्थन किया था। लॉर्ड कर्ज़न, एन्ड्रू[a] फ्रेज़र तथा रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। सात करोड़ अस्सी लाख आबादी वाले बंगाल में से एक करोड़ दस लाख आबादी वाला पूर्वी बंगाल तथा आसाम अलग कर उसे एक नया प्रान्त बनाने का निश्चय किया गया, इसकी राजधानी ढाका निश्चित की गई। सरकार ने यह दावा किया कि वह प्रशासनिक सक्षमता बढ़ाने की दृष्टि से बंगाल विभाजन का निर्णय ले रही है परन्तु वास्तविकता कुछ और थी। अविभाजित बंगाल में आसाम, उड़ीसा तथा बिहार सम्मिलित थे। इन क्षेत्रों को बंगाल से अलग कर प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाया जा सकता था किन्तु बंगाल प्रान्त से बिहार तथा उड़ीसा को अलग करने के प्रस्ताव को कर्ज़न ने स्वीकार नहीं किया। उसने भारत सचिव को भेजे तार में इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए अंकित किया कि बंगाल से गैर-बंगाली क्षेत्र को अलग करने से तो बंगालियों की शक्ति और बढ़ जाती और यही अंग्रेज़ नहीं चाहते थे। कर्ज़न इससे पहले बरार के मामले में ऐसा कर चुका था। 1902 में निज़ाम से प्राप्त मराठी भाषी क्षेत्र बरार को बम्बई प्रेसीडैन्सी में न मिलाकर उसे मध्य प्रान्त में मिलाया गया क्योंकि बम्बई प्रेसीडेन्सी में इस क्षेत्र को मिलाने से शिवाजी के हिन्द स्वराज की अवधारणा को बल मिल सकता था।

कर्ज़न फूट डाल कर शासन करने की नीति में विश्वास करता था। बंगाल में राजनीतिक चेतना का प्रसार-प्रचार करने में बंगाली भद्रलोक की अहम भूमिका थी। बंगाली मुसलमान, बंगाली हिन्दुओं की तुलना में पिछड़ी स्थिति में थे और उनमें सामान्यतः राजनीतिक जागृति भी कम थी। कर्ज़न मुसलमानों को कुछ सुविधाएं देकर उन्हें अपनी ओर मिलाना चाहता था। बंगाल विभाजन का मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था।

गृह सचिव एच0 एच0 रिज़ले ने फ़रवरी तथा दिसम्बर 1904 में अपने द्वारा लिखी टिप्पणियों में यह स्वीकार किया था कि -

एकीकृत बंगाल एक शक्ति है तथा विभाजित बंगाल का मतलब है विभाजित शक्ति। हमारा मुख्य उद्देश्य अपने विरोधियों की शक्ति को विभाजित कर उसको कमज़ोर करना है।

पूर्वी बंगाल तथा आसाम के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फुलर ने अपनी दो पत्नियों - हिन्दू तथा मुसलमान में, दूसरी बीबी अर्थात् मुसलमान को अपनी चहेती बीबी बताया था। 16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल का विभाजन कर दिया गया।

4.5. बंगाल विभाजन का विरोध

4.5.1 विभिन्न समुदायों, संगठनों तथा पत्रों द्वारा बंगाल विभाजन का विरोध

बंगाल विभाजन के निर्णय को भारतीयों ने अपना राष्ट्रीय अपमान माना। दिसम्बर, 1903 में बंगाल विभाजन की योजना के प्रकाशित होते ही भारतीय प्रेस ने इसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। आनन्द बाज़ार पत्रिका, चारु मिहिर, संजीवनी, ढाका गज़ट आदि पत्रों ने इस योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। 'बैंगाल नेशनल चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स' तथा 'सेन्ट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसियेशन ऑफ़ कैलकटा' ने यह स्पष्ट किया कि सभ्यता, भाषा, आचार-विचार, भू-राजस्व प्रशासन आदि की दृष्टि से पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी बंगाल दोनों एक दूसरे के करीब हैं और यदि विभाजन करना है तो बंगाल से भिन्न बिहार व उड़ीसा को उससे अलग कर दिया जाए। बंगाल विभाजन के निर्णय का इंग्लैण्ड में भी विरोध हुआ। लन्दन टाइम्स तथा मैनचेस्टर गार्जियन ने इस निर्णय को बंगालवासियों के लिए अन्यायपूर्ण बताया तथा इसके विरुद्ध आन्दोलन को न्यायसंगत ठहराया। दिसम्बर, 1905 में भारत सचिव का पद सम्भालने के बाद जॉन मॉर्ले ने पार्लियामेन्ट में यह स्वीकार किया कि यह निर्णय जन-भावनाओं के सर्वथा विरुद्ध था। भारत के भूतपूर्व सेनाध्यक्ष लॉर्ड किचनर ने भी बंगाल विभाजन के निर्णय की भर्त्सना की किन्तु इस दुर्भाग्यपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण निर्णय को वापस नहीं लिया गया।

बंगाल विभाजन के विरोधियों ने यह प्रयास किया कि सभी वर्ग उनके आन्दोलन में सम्मिलित हों तथा प्रेस का उन्हें पूर्ण सहयोग मिले। बंगाल विभाजन रद्द कराने के उद्देश्य से स्थानीय, प्रान्तीय राष्ट्रीय तथा गृह सरकार को याचिकाएं भेजी गईं तथा इस निर्णय के विरोध में सैकड़ों जन-सभाएं की गईं। समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों में विभाजन से होने वाली कठिनाइयों को दर्शाया गया। यह बताया गया कि किसी नए प्रान्त का गठन मुख्यतः भौगोलिक, भाषागत, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक आधार पर किया जाता है किन्तु इस निर्णय का ऐसा कोई आधार नहीं था। इस अन्यायपूर्ण निर्णय के विरुद्ध ब्रिटिश जनता से भी सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया गया। कलकत्ता के टाउन हॉल में इसके विरोध में मार्च, 1904 तथा जनवरी, 1905 में सभाएं हुईं। विभाजन के निर्णय के विरोध में पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अमीर, गरीब सभी ने रक्षा बन्धन मनाया। रबीन्द्रनाथ ने लिखा -

किसी शासक की तलवार, चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, एक ही जाति में विधाता द्वारा प्रदत्त एकता के टुकड़े नहीं कर सकती है।

रबीन्द्रनाथ टैगोर का -

आमार शोनार बांग्लादेश,

आमी तोमार भालोबाशी

गीत, सितम्बर, 1905 के बंगदर्शन में प्रकाशित हुआ था। इस गीत में सोने जैसे बंगाल की महिमा का गुणगान करते हुए एक बंगवासी उसके प्रति अपने शाश्वत प्रेम का उल्लेख करता है। अपनी मातृभूमि को वह अपनी माता के पद पर प्रतिष्ठित करता हुआ यह भाव व्यक्त करता है कि उसके मुखड़े पर उदासी का भाव उसकी आंखों को अश्रुपूरित कर देता है।

4.5.2 स्वदेशी आन्दोलन

4.5.2.1 बहिष्कार

सरकार बंगाल विभाजन के निर्णय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण विरोध के दबाव में अपना इरादा बदलने को तैयार नहीं हुई तो फिर प्रतिरोध का रास्ता अपनाया गया। कृष्णकुमार मित्र के सप्ताहिक पत्र संजीवनी के 13 जुलाई, 1905 के अंक में ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का सुझाव दिया गया। 16 अक्टूबर, 1905 अर्थात् विभाजन के दिन को शोक-दिवस के रूप में मनाया गया, बाज़ार बन्द कर दिए गए तथा जुलूस निकाले गए। बिपिन चन्द्र पाल के पत्र न्यू इण्डिया, अरबिन्दो घोष के पत्र बन्दे मातरम्, ब्रह्मबांधव उपाध्याय के पत्र सांध्य तथा बारीन्द्र कुमार घोष के पत्र जुगान्तर में बंगाल विभाजन को रद्द कराने में शान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा केवल सृजनात्मक कार्यक्रमों को अपर्याप्त बताया गया। सांध्य में सरकारी कर्मचारियों का सामाजिक बहिष्कार करने का आवाहन किया गया।

बॉयकॉट अर्थात् बहिष्कार को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की रणनीति सर्वप्रथम आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में अपनाई गई थी। भारतीयों ने इस अप्रिय निर्णय को बदलने के लिए सरकार पर दबाव डालने के लिए इसी रणनीति का प्रयोग किया। भारतीय जानते थे कि इंग्लैण्ड की सरकार तथा भारत की सरकार इग्लैण्ड के उद्योगपतियों तथा व्यापारियों के इशारों पर चलती है और यदि उन्हें भारतीयों के निर्णय से किसी प्रकार की हानि उठानी पड़ेगी तो वो भारत की सरकार पर उस निर्णय को बदलने के लिए दबाव डाल सकते हैं। इसलिए भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के उद्देश्य से बॉयकाट अर्थात बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बॉयकॉट अर्थात् ब्रिटिश सामान के बहिष्कार को आन्दोलनकारियों का अन्तिम अस्त्र माना। अरबिन्दो घोष ने बंगाल विभाजन के विरुद्ध बहिष्कार के निर्णय तथा आन्दोलन के अन्य तरीकों को स्वराज तथा पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने की दिषा में पहला कदम बताया था। बॉयकाट के अंतर्गत सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों आदि का बहिष्कार किया गया।

लोकमान्य तिलक ने बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को केवल बंगाल के लिए नहीं, अपितु समस्त भारत के लिए दुर्भायपूर्ण बताया। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ बॉम्बे प्रेसीडेन्सी में अनेक स्थानों पर बहिष्कार के समर्थन में जन-सभाओं का आयोजन किया। लाला लाजपत राय ने इस आन्दोलन को पंजाब में फैलाया। कांग्रेस ने 1905 के अधिवेशन में ब्रिटिश कपड़ों के बहिष्कार हेतु प्रस्ताव पारित किया गया। 1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (1906) के बाद तिलक ने केसरी में लिखा-

हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की भांति है, स्वदेशी इसका तना है जिसकी कि दो विशाल शाखाएं स्वदेशी और बॉयकाट आंदोलन के रूप में निकली हैं। हमारा राष्ट्र एक मनुष्य है। स्वदेशी उसका धड़ है और स्वराज्य तथा बॉयकाट उसके शरीर के हाथ तथा पैर हैं।

ज़मींदारों ने अपनी-अपनी ज़मींदारी में किसानों को विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने के लिए कहा। शान्तिपुर तथा नवद्वीप के पुजारियों ने उन लोगों के लिए पूजा करने से मना कर दिया जो विदेशी वस्त्र धारण किए हुए थे। डॉक्टर, वकील, अध्यापक, मज़दूर, नाई, धोबी, साधु, सन्यासी,

सभी ने बहिष्कार आन्दोलन को सफल बनाने में अपना योगदान दिया। विदेशी कपड़ों की होली जलाकर आन्दोलनकारियों ने अपना आक्रोश व्यक्त किया। विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने आन्दोलनकारियों ने धरना देकर उनके व्यापार में बाधा पहुंचाने का प्रयास किया। बहिष्कार की भावना का कारखानों पर भी प्रभाव पड़ा। अंग्रेज़ मिल मालिकों के प्रतिष्ठानों में श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों ने हड़तालें कीं तथा टे^{a}ड यूनियन्स का गठन किया। कलकत्ता के कस्टम कलैक्टर ने सितम्बर, 1906 में पिछले साल की तुलना में आयातित सूती कपड़े, सूती धागे, नमक, सिगरेट तथा जूतों में आई अप्रत्याशित कमी की बात स्वीकार की।

सरकार ने बहिष्कार को राजद्रोह, आंग्ल-विरोधी तथा मुस्लिम विरोधी माना अतः उसके दमन के लिए उसने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। जनसभाओं तथा प्रचार कार्यक्रम पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वन्दे मातरम् का नारा लगाने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। छात्र आन्दोलनकारियों को कार्लाइल सर्कुलर के द्वारा रोकने का प्रयास किया गया। आन्दोलनकारियों के दमन के लिए बारिसाल में गोरखा सेना बुलाई गई। स्वदेशी तथा बॉयकाट आन्दोलन में भाग लेने वालों को सरकारी कॉलेजों और नौकरियों से निकाला गया।

4.5.2.2 स्वदेशी का सकारात्मक रूप

4.5.2.2.1 आर्थिक आत्मनिर्भरता

पिछले डेढ़ सौ साल के अंग्रेज़ी शासन में भारत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफ़ी हद तक आयातित वस्तुओं पर निर्भर करने लगा था अतः विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कार्यक्रम सफल बनाने के लिए यह आवश्यक था कि भारत में उन वस्तुओं का उत्पादन बढ़े। स्वदेशी के अंतर्गत भारत में बनी वस्तुओं के प्रयोग का प्रण लिया गया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए स्वदेशी स्टोर खोले गए तथा स्वदेशी मेलों का आयोजन किया गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में प्रकाशित हिन्दी पत्रिका सरस्वती के अगस्त, 1905 के अंक में जापान-रूस युद्ध में जापान की विजय का प्रमुख कारण उसका स्वदेश के प्रति प्रेम तथा स्वदेशी के प्रति अनुराग बताया गया था। इलाहाबाद से प्रकाशित हिन्दी प्रदीप के अक्टूबर, 1905 के अंक में बालकृष्ण भट्ट ने स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए महिलाओं के योगदान की महत्ता पर प्रकाश डाला। इस पत्र में भारतीयों की परमुखकातरता पर खेद प्रकट किया गया था।

स्वदेशी आन्दोलन ने कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। हैण्डलूम तथा रेशम उद्योग को पुनर्जीवित किया गया। बंगलक्ष्मी कॉटन मिल्स, मोहिनी मिल्स, बंगाल केमिकल्स, स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कम्पनी, स्वदेशी बैंक तथा स्वदेशी बीमा कम्पनियों की स्थापना की गई। अहमदाबाद और कानपुर में कपड़ा उद्योग को विकसित किया गया। जमशेदजी टाटा का जमशेदपुर में स्थापित इस्पात का कारखाना भारत का गौरव बन गया।

4.5.2.2.2 ग्राम स्वराज्य

स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व ही 1904 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वदेशी समाज शीर्षक अपने भाषण में गांवों में स्वायत्तता, तथा उनकी आत्मनिर्भरता को पुनर्स्थापित करने के लिए कुटीर उद्योगों के पुनरुत्थान पर बल दिया दिया था। इस आन्दोलन में स्वदेशी न्याय-व्यवस्था का भी पोषण किया

गया। अष्विनीकुमार दत्त की 'स्वदेश बांधव समिति' ने बारिसाल के गांवों में एक साल के भीतर में 89 पंचायतों द्वारा 523 मामले निबटाए थे। अप्रैल, 1907 तक 1000 ग्राम समितियां इस कार्य में जुटी थीं।

4.5.2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा

सरकारी शिक्षा संस्थानों में महंगी अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति से विद्यार्थियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाया जाता था और अपनी संस्कृति तथा अपने संस्कारों के प्रति घृणा करना सिखाया जाता था। सतीशचन्द्र मुकर्जी के पत्र डॉन ने राष्ट्रीय शिक्षा की महत्ता पर प्रकाश डाला। स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना की गई। 1906 में बैंगाल टैक्निकल इन्सटीट्यूट की स्थापना की गई। 1906 में ही बंगाल नेशनल कॉलेज की स्थापना की गई जिसके प्राचार्य अरबिंदो घोष थे। इस विद्यालय में मानव चरित्र को महत्व दिया गया था और साथ ही आधुनिक तकनीक के प्रयोग को देश के विकास के लिए आवश्यक मानकर उसको अपनाए जाने बल दिया गया था।

राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत में भारतीय भाषाओं में प्रशिक्षण देने वाले तकनीकी संस्थानों की स्थापना को महत्व दिया गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्तिनिकेतन में इस पद्धति का प्रचलन किया गया। पश्चिम बंगाल, पूर्वी बंगाल तथा बिहार में राष्ट्रीय पाठशालाओं की स्थापना की गई। स्वामी श्रद्धानन्द ने हरद्वार में वैदिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा के प्रसार हेतु गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की।

4.5.2.2.4 राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकीकरण स्वदेशी आन्दोलन का लक्ष्य था। इस आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम एकता को सदैव महत्व दिया गया। स्वदेशी आन्दोलन केवल बंगाल तक सीमित नहीं रहा, यह पहला राजनीतिक आन्दोलन था जो किसी क्षेत्र, समुदाय अथवा वर्ग तक सीमित नहीं था। महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, पंजाब के लाला लाजपत राय, संयुक्त प्रान्त के मदनमोहन मालवीय, दक्षिण भारत के सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि सभी देश को एकसूत्र में बांधने का प्रयास कर रहे थे। वन्दे मातरम् गीत देशवासियों के लिए राष्ट्रगान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था।

4.5.2.2.5 स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज अथवा स्वशासन

भारतीयों ने स्वशासन अथवा स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने का एकजुट प्रयास पहली बार स्वदेशी आन्दोलन में ही किया था। इसी आन्दोलन के कारण कांग्रेस ने भी पहली बार स्वराज्य की प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया था।

4.5.3 क्रान्तिकारी आतंकवाद

क्रान्तिकारी आतंकवादियों का मानना था कि विदेशी शासन भारतीयों के धर्म, उनकी संस्कृति और उनके नैतिक मूल्यों के लिए विनाषकारी है और उनके शासन को जड़ से उखाड़ फेंकना मातृभूमि के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए आवश्यक है। उनका कहना था कि जब तक भारत से विदेशी शासन समाप्त नहीं हो जाता वो ऐसे ही लड़ते रहेंगे और लड़ाई में क्या उचित है, क्या

अनुचित है, इसकी चर्चा भी बेमानी होगी। स्वतन्त्रता के शत्रुओं, चाहे वो अंग्रेज़ हों या भारतीय, उनके विरुद्ध बम और पिस्तौल का प्रयोग क्रान्तिकारियों की दृष्टि में न्यायसंगत था। वो जानते थे कि अधिकारियों तथा गद्दारों की छुटपुट हत्याओं से वो सरकार का तख्ता नहीं पलट पाएंगे पर उन्हें आशा थी कि इससे अत्याचारी सरकार हतोत्साहित अवश्य होगी और उसकी प्रशासनिक व्यवस्था चरमरा जाएगी।

प्रमोथ मित्तर, जतीन्द्रनाथ बनर्जी तथा बारीन्द्रकुमार घोष ने 1902 में मिदनापुर तथा कलकत्ते में क्रान्तिकारी संस्था अनुशीलन समिति की स्थापना की। मिदनापुर में ज्ञानेन्द्रनाथ बसु द्वारा स्थापित मिदनापुर सोसायटी तथा कलकत्ते की सरला घोषाल की व्यायामशाला और युवाओं द्वारा स्थापित आत्मोन्नति समिति भी क्रान्तिकारी संस्थाएं थीं। रूस तथा इटली के क्रान्तिकारी आन्दोलनों से प्रेरित होकर ब्रिटिश शासन के उन्मूलन के लिए क्रान्तिकारियों ने निम्न योजना बनाईः

- प्रेस के माध्यम से क्रान्ति की भावना का प्रचार किया जाए।
- स्वतन्त्रता सेनानियों के जीवन पर आधारित नाटकों का मंचन हो तथा उन पर लिखे गीतों का पाठ हो।
- सरकार के लिए परेशानी खड़ी करने के लिए हड़तालों तथा जल्सों, जुलूसों का आयोजन किया जाए।
- क्रान्तिकारी आन्दोलन को दृढ़ आर्थिक प्रदान करने के लिए सरकारी और सरकार के समर्थकों के प्रतिष्ठानों पर डाके डाले जाएं।
- 5. . युवकों को व्यायाम, सैनिक शिक्षा, शक्तिपूजा आदि के लिए प्रशिक्षित किया जाए। हथियार एकत्र किए जाएं, बम और पिस्तौलों के प्रयोग व उनके निर्माण हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।

1905 में अरबिन्दो ने अपनी पुस्तिका भवानी मन्दिर में तीस करोड़ भारतीयों से मां भवानी को अपनी शक्ति स्थानान्तरित करने का आवाहन किया था। अरबिन्दो ने यह आशा व्यक्त की थी कि देशवासियों की संगठित शक्ति के बल पर मां आततायी का समूल नाश करने में सक्षम होंगी। अरबिन्दो ने देशभक्ति को धर्म का अविभाज्य अंग माना।

बारीन्द्रकुमार घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अप्रैल, 1906 में जुगान्तर पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पूर्वी बंगाल के दमनकारी लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फ़ुलर को मारने का असफल प्रयास किया गया। जुगान्तर के मार्च, 1907 तथा अगस्त 1907 के अंकों में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण रणनीति को निरर्थक मानते हुए, उनकी प्राप्ति हेतु अपना खून बहाना आवश्यक बताया गया। हेमचन्द्र कानूनगो सैनिक प्रशिक्षण के लिए पेरिस गए, उन्होंने लौटकर मानिकतल्ला में एक धार्मिक विद्यालय में बम बनाने का गुप्त कारखाना खोला।

30 अप्रैल, 1908 को खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने अत्याचारी न्यायधीश किंग्सफ़ोर्ड की हत्या का असफल प्रयास किया। नवम्बर, 1909 में गवर्नर जनरल लॉर्ड मिन्टो की रेलगाड़ी से अहमदाबाद यात्रा के समय दो बम रेल की पटरी पर पाए गए। सरकार ने क्रान्तिकारियों के दमन के लिए हर सम्भव उपाय किए। सरकार के विरुद्ध साज़िश करने वालों और सरकार के विरुद्ध देशवासियों को भड़काने वालों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए गुप्तचरों की सेवाएं ली गईं। 1908 में सरकार ने 'एक्सप्लोसिव सब्सटेन्सेज़ एक्ट' तथा 'न्यूज़पेपर एक्ट', 'इण्डियन लॉ अमेन्डमेन्ट एक्ट' बनाकर क्रान्तिकारियों की गतिविधियों तथा उनके प्रचार कार्य को कुचलने का प्रयास किया।

4.6.1 बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना

बहिष्कार ने सरकार तथा ब्रिटिश उद्योग व व्यापार की कठिनाइयां बढ़ा दीं थीं। ब्रिटिश उद्योगपतियों तथा व्यापारियों ने भारत सरकार पर इस निर्णय को रद्द करने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया। 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करके हिन्दू-बहुल पश्चिमी बंगाल तथा मुस्लिम-बहुल पूर्वी बंगाल को फिर से मिलाकर एक प्रान्त बना दिया गया। अब हिन्दी, उड़िया तथा आसामी भाषी क्षेत्रों के लिए अलग प्रशासनिक इकाइयां बना दी गईं। बाद में बिहार तथा उड़ीसा को मिलाकर एक अलग प्रान्त बना दिया गया तथा आसाम को फिर से चीफ़ कमिश्नरशिप बना दिया गया। किन्तु बंगालियों के प्रभाव को कम करने के लिए भारत की राजधानी कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली बना दी गई।

4.6.2 भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद का आकलन

4.6.2.1 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की सीमाएं

1. स्वदेशी आन्दोलन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को कभी भी पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सका।
2. अंग्रेज़ों ने भारत की राजधानी को कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली स्थानान्तरित कर बंगाल के राजनीतिक महत्व को घटाने में सफलता प्राप्त की।
3. सरकार ने साम्प्रदायिकता के आधार पर भारतीयों में फूट डालने के लिए बंगाल विभाजन किया था। इससे सरकार को हिन्दू और मुसलमानों में दरार डालने में पर्याप्त सफलता मिली थी। 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधारा भी उग्र होती चली गई। इस अलगाववादी विचारधारा के पोषण ने धर्म के आधार पर भारत के विभाजन हेतु अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थीं।
4. क्रान्तिकारी आतंकवाद को भारतीय जनता ने कभी भी पूरी तरह आत्मसात नहीं किया। क्रान्तिकारियों के पास संसाधनों की सदैव कमी रही और उनमें संगठन व अनुशासन की कमी भी रही इसलिए इसका विकास जन-आन्दोलन के रूप में नहीं हो सका और सरकार को इसे कुचलने में हर बार सफलता मिली।

4.6.2.2 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की उपलब्धियां

1. बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली महत्वपूर्ण सफलता थी। सरकार के इस निर्णय का श्रेय मुख्यतः स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन को दिया जाना चाहिए।
2. स्वदेशी आन्दोलन भारतीय इतिहास का पहला अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन था। इस आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य - बंगाल विभाजन को रद्द किया जाना तो प्राप्त कर ही लिया गया था, साथ में इसके राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज, इसके आर्थिक लक्ष्य - आर्थिक आत्म-निर्भरता, इसके अन्य लक्ष्य - राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय शिक्षा के विकास को परवर्ती आन्दोलनों - होमरूल आन्दोलन तथा असहयोग व सविनय अवज्ञा आन्दोलन में अपनाया गया तथा सरकार पर दबाव डालने के लिए इस आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की नीति का भी अनुगमन किया गया। सरकार को 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में भारतीयों को विधान परिषदों में सदस्यों के चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ करनी पड़ी और 1917 की मान्टेग्यू की घोषणा में भारतीयों को स्वशासन दिए जाने को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार करना पड़ा।
3. एच0 चक्रबर्ती अपनी पुस्तक पॉलिटिकल प्रोटैस्ट इन बैंगालः बॉयकॉट एण्ड टैरेरिज़्म, 1905-18 में 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने के फ़ैसले तथा सरकार द्वारा भारतीयों को संवैधानिक सुधार दिए जाने का श्रेय क्रान्तिकारियों को देते हैं। क्रान्तिकारियों ने उत्कट एवं निःस्वार्थ देशभक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। नाबालिग खुदीराम बोस को जब प्राणदण्ड दिया गया तब बंगाल की देशभक्त युवतियों ने खुदीराम बोस की चिता की राख से अपनी मांग सजाईं और उसके नाम के छापे की साड़ियां पहनीं।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद के विकास की समीक्षा कीजिए।
2. सरकार ने बंगाल विभाजन के निर्णय को किन कारणों से उचित ठहराया था?
3. स्वदेशी आन्दोलन को पहला अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन क्यों कहा जाता है?

4.7 सारांश

मध्यकालीन बंगाल में जैसोर के षासक महाराज प्रतापादित्य तथा बर्दवान के शासक राजा सीताराम राय ने हिन्दुओं के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रयास किया था। राजनारायण बोस के 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' एवं नबगोपाल मित्र के 'हिन्दू मेला' ने भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर

उद्योग तथा स्वास्थ्य निर्माण के विकास का प्रयास किया। बंकिम चन्द्र का उपन्यास आनन्द मठ विभिन्न धार्मिक, देशभक्तिपूर्ण एवं राष्ट्रीय गतिविधियों का प्रेरणा स्रोत बना। इसका 'वन्देमातरम् गीत' करोड़ों देशवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार करने में सफल रहा।

लॉर्ड कर्ज़न, एन्ड्रू फ्रेज़र तथा रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा प्रशासनिक क्षमता बढ़ाने के बहाने बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था।

भारतीय पत्रों, व्यापारिक संगठनों तथा मुसलमानों सहित सभी समुदायों ने इस योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। आन्दोलनकारियों ने अब शान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा केवल सृजनात्मक कार्यक्रमों को अपर्याप्त बताया। आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में अपनाई गई बॉयकॉट अर्थात् बहिष्कार की नीति को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की रणनीति स्वदेशी आन्दोलन में भी अपनाई गई। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के लिए बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। आन्दोलनकारियों ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं, अदालतों, कार्यालयों आदि का बहिष्कार किया। लोकमान्य तिलक ने बॉयकाट को महाराष्ट्र में तथा लाला लाजपत राय ने इसे पंजाब तक फैला दिया। ज़मींदारों, व्यापारियों, पुजारियों, डॉक्टरों, वकीलों, अध्यापकों, मज़दूरों, साधुओं आदि सभी ने बहिष्कार आन्दोलन को सफल बनाने में अपना योगदान दिया।सरकार ने बहिष्कार को राजद्रोह, आंग्ल-विरोधी तथा मुस्लिम विरोधी माना अतः उसके दमन के लिए उसने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। स्वदेशी आन्दोलन ने भारत को आर्थिक आत्मनिर्भरता दिलाने हेतु कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। ग्राम स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा तथा राष्ट्रीय एकता स्वदेशी आन्दोलन के अन्य लक्ष्य थे। स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज अथवा स्वशासन प्राप्त करना था।

क्रान्तिकारी आतंकवादियों का मानना था कि विदेशी शासन भारतीयों के धर्म, उनकी संस्कृति और उनके नैतिक मूल्यों के लिए विनाशकारी है और उनके शासन को जड़ से उखाड़ फेंकना आवश्यक है। स्वतन्त्रता के शत्रुओं के विरुद्ध बम और पिस्तौल का प्रयोग क्रान्तिकारियों की दृष्टि में न्यायसंगत था। अनुशीलन समिति, मिदनापुर सोसायटी आत्मोन्नति समिति आदि क्रान्तिकारी संस्थाएं थीं। अरबिन्दो घोष, बारीन्द्रकुमार घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त, हेमचन्द्र कानूनगो, खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, रास बिहारी बोस आदि इस काल के प्रमुख क्रान्तिकारी थे।सरकार ने क्रान्तिकारियों के दमन के लिए हर सम्भव उपाय किए। सरकार के विरुद्ध देशवासियों गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए गुप्तचरों की सेवाएं ली गईं। 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करके हिन्दू बहुल पश्चिमी बंगाल तथा मुस्लिम बहुल पूर्वी बंगाल को फिर से मिलाकर एक प्रान्त बना दिया गया।

स्वदेशी आन्दोलन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को कभी भी पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सका। बंगाल विभाजन के निर्णय के बाद सरकार को हिन्दू और मुसलमानों में दरार डालने में पर्याप्त सफलता मिली थी। क्रान्तिकारी आतंकवाद को भारतीय जनता ने कभी भी पूरी तरह आत्मसात नहीं किया इसलिए इसका विकास जन-आन्दोलन के रूप में नहीं हो सका।

बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली महत्वपूर्ण सफलता थी। स्वदेशी आन्दोलन के राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज, इसके आर्थिक लक्ष्य - आर्थिक आत्म-निर्भरता, इसके अन्य लक्ष्य - राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय शिक्षा के विकास को परवर्ती आन्दोलनों - होमरूल आन्दोलन तथा असहयोग व सविनय अवज्ञा आन्दोलन में अपनाया गया तथा सरकार पर दबाव डालने के लिए इस आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की नीति का भी अनुगमन किया गया। बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने के फ़ैसले तथा सरकार द्वारा भारतीयों को संवैधानिक सुधार दिए जाने का आंशिक श्रेय क्रान्तिकारियों को भी जाता है।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

बॉयकाटः मूलतः आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन से ली गई अवधारणा जिसका तात्पर्य बहिष्कार है।

भद्रलोक बंगाली: उच्च अथवा मध्यवर्गीय सुशिक्षित शहरी सवर्ण बंगाली।

एक्सप्लोसिव सब्सटेन्सेज़ः विस्फोटक पदार्थ

चीफ़ कमिश्नरशिपः चीफ़ कमिश्नर के आधीन प्रशासनिक इकाई

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4 .3.2 उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में राष्ट्रवादी भावना का विकास
2. देखिए 4 .4.2 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका क्रियान्वयन
3. देखिए 4 .5.2.2.4 राष्ट्रीय एकता

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम, बम्बई, 1969

बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

4.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

सेन, सुकुमार - हिस्ट्री ऑफ़ बैंगाली लिटरेचर, नई दिल्ली, 1979

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वदेशी आन्दोलन के सकारात्मक पक्ष पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
2. बंगाल विभाजन के विरुद्ध बंगाल में क्रान्तिकारी आतंकवाद के विकास का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई पांच

क्रान्तिकारी आन्दोलन

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 बंगाल और अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियां का उदय
5.4 क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वरूप और नतीजे
5.5 अन्य प्रान्तों में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार
5.5.1 उत्तर प्रदेश
5.5.2 गुजरात
5.5.3 पंजाब
5.5.4 मद्रास
5.5.5 महाराष्ट्र
5.6 सारांश
5.7 पारिभाषिक शब्दावली
5.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों की शुरुआत बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हो चुकी थी। देश भर में गुप्त समूह बन चुके थे। इस किस्म के संगठन सबसे पहले में मिदनापुर में उभरे थे, जिनके संस्थापक ज्ञानेन्द्रनाथ बसु थे। बाद में, कलकत्ता में प्रमथ मित्र ने अरबिन्दो घोष के दो प्रतिनिधियों, जतीन्द्रनाथ बनर्जी और बारीन्द्रकुमार घोष के साथ मिलकर बाद में खासा चर्चित होने वाली अनुशीलन समिति की स्थापना की। शुरुआती दौर में ये समूह अपने सदस्यों को शारीरिक व नैतिक प्रशिक्षण देने तक सीमित रहा करते थे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलनों से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से भी परिचित हो सकेंगे :

1. बंगाल और अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियां
2. क्रान्तिकारी आन्दोलन: स्वरूप और परिणाम
3. उत्तर प्रदेशमें चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार
4. गुजरातमें चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार
5. पंजाब में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार
6. मद्रास में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

5.3 बंगाल और अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियों का उदय

1906 में कलकत्ता अनुशीलन के बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त ने साप्ताहिक युगान्तर का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने कुछ कुख्यात लोगों के सफाये की कोशिशें की, हालांकि इन कोशिशों में वे सफल न हो सके थे। इसी दरमियान प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हेमचन्द्र कानूनगो एक रूसी आप्रवासी से प्रशिक्षण हासिल करने पेरिस गए। उन्होंने लौटकर एक धार्मिक स्कूल और बम बनाने का कारखाना स्थापित किया, जिसे कलकत्ता के बाहरी इलाके में स्थित मानिकतला मोहल्ले के एक बगीचे वाले घर में लगाया गया था। लेकिन **30** अप्रैल **1908** को केनेडी महिलाओं की हत्या के चन्द घन्टों बाद पुलिस ने इस कारखाने को पकड़ लिया। इसी दिन प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस ने एक बदनाम मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफर्ड को मारने की कोशिश की थी, लेकिन वह बच गया और उनके हमले में ये महिलायें मारी गई थीं। इस कांड के बाद पुलिस ने क्रान्तिकारियों के इस समूचे दल को गिरफ्तार कर लिया था।

इस बीच पूर्वी बंगाल में ढाका अनुशीलन की संगठित गतिविधियाँ शुरू हो चुकी थीं। संगठन का संचालन पुलिन दास किया करते थे। **2** जून **1908** की बारा डकैती इस समूह का सबसे पहला साहसिक अभियान था। **1911** में बंग-विभाजन की कार्यवाही वापस ली जा चुकी थी। तब तक यह दल समूचे प्रान्त में फैल चुका था और अन्य प्रान्तों में भी इसकी पहुंच बन चुकी थी। समूह का मुख्य काम सरकारी खजाने को लूटना था, जिसे वे 'स्वदेशी डकैती' कहा करते थे। इन डकैतियों का मकसद अपनी कार्यवाहियों के लिए कोष का प्रबन्ध करना था। इसके अलावा उनकी योजना में अंग्रेज व अन्य औपनिवेशिक अफसरों की हत्या करना शामिल था। जो भी सरकार के लिए काम करे, उसे वे गद्दार समझते थे, इसलिए वे उसकी हत्या भी कर देते थे। दूसरा समूह जतीन्द्रनाथ मुकर्जी के नेतृत्व वाला युगान्तर था, जो अनेक दलों का एक ढीला-ढाला मंच था। यह समूह उस वक्त अपने संसाधन जुटाने और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बनाने में लगा था, और उसका मकसद उचित अवसर उपस्थित होने पर अंग्रेजों के खिलाफ एक बड़ा सैनिक हमला आयोजिक करना था। **23** दिसम्बर **1912** को रास बिहारी बोस और सचिन सान्याल ने तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग पर हमला किया, हालांकि हत्या के लिए की गई इस कार्यवाही में वे सफल नहीं हुए थे।

इन संगठनों के अलावा वीडी सावरकर ने **1904** में क्रान्तिकारियों के एक गुप्त संगठन अभिनव भारत का गठन किया था। बाद में इस दल की कार्यवाहियों का केन्द्र लंदन स्थानान्तरित हो गया था (जिसपर अगले पाठ में हम और अधिक चर्चा करेंगे)। **1905** के बाद ऐसे कई अखबार निकलने लगे थे जो हिंसा के जरिए अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंखने की खुली वकालत करते थे। इन घटनाओं से भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के युग का आगाज़ हो चुका था। भारत के सभी प्रान्तों में क्रान्तिकारियों के गुप्त संगठन सक्रिय हो रहे थे। इनमें युगान्तर और अनुशीलन समिति की सक्रियता सबसे स्थायी साबित हुई। महाराष्ट्र और पंजाब जैसे अन्य प्रान्तों में भी चरमपंथी व रैडिकल आन्दोलन हो रहे थे, हालांकि वहां इन आन्दोलनों का जोर जन गोलबन्दी करने और क्रान्तिकारी साहित्य निकालने पर ज्यादा था। इन आन्दोलनों को इसी दौर में दमन झेलना पड़ा था, जिसके कारण महाराष्ट्र में एक अल्प दौर के अलावा यह क्रान्तिकारी आतंकवाद के रास्ते

पर नहीं बढ़ पाया था। बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त, वीडी सावरकर नासिक में सक्रिय थे। उन्होंने सफलतापूर्वक लंदन से हथियार जुटाए थे, जिनका इस्तेमाल नासिक के जिला मजिस्ट्रेट की हत्या में किया गया था। ग्वालियर में क्रान्तिकारियों ने नव भारत समाज का गठन किया था, जिसके द्वारा भारत में गणतन्त्र की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया गया था। बाद में, लंदन में लार्ड वायली की हत्या के बाद इन दोनों समूहों की कार्यवाहियाँ ठप हो गई थीं। नासिक और ग्वालियर षड़यन्त्र मुकदमों के बाद के माहौल में महाराष्ट्र की क्रान्तिकारी गतिविधियां भी धीरे-धीरे समाप्त हो गईं।

अंग्रेज **1918** तक बंगाल में भी राज्य के भीतर से या बाहर से संगठित सभी क्रान्तिकारी आन्दोलन रोकने में सफल हो गए थे। आन्दोलन खत्म करने के लिए अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों के बाद कठोर सजायें दी जा रही थीं। बाद में तो दमन चक्र ने सार्वजनिक गतिविधियों को भी अपनी जद में ले लिया था। इनमें रैडिकल और क्रान्तिकारी साहित्य के प्रकाशन और राजनीतिक सभाओं के आयोजन की गतिविधियॉ भी शामिल थीं।

5.4 क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वरूप और नतीजे

इस दौर के क्रान्तिकारी आन्दोलन को देखकर मोटे तौर पर तीन सवाल उठते हैं। सबसे पहला यह कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का उदय भारतीय इतिहास के इसी दौर में क्यों हुआ? दूसरा, क्रान्ति और मुक्ति के वे विचार क्या थे जिनके आलोक में इस आन्दोलन के नेता अपनी कार्यवाहियाँ चलाते थे? तीसरा, भारतीय समाज पर और अंग्रेजी शासन के खिलाफ अपने मुक्ति-संग्राम में इस क्रान्तिकारी आन्दोलन ने क्या असर डाला है?

प्रोफेसर बिपिन चन्द्र अपनी पुस्तक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में इस तर्क को स्थापित करते हैं कि युवाओं में अपनी देशभक्ति जाहिर करने की बेकरारी ही बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन की शुरुआत करने वाला कारण था। उन्नीसवीं सदी के परवर्ती काल के शिक्षित शहरी युवा ने भारत में अंग्रेजी शासन को स्वयं देखा था और उसकी असलियत को भी वे समझ चुके थे। ये बेकरार युवा कांग्रेस की राजनीति से भी विक्षुब्ध थे, जिसकी प्रगति की घोंघा चाल और फरियादी चरित्र को वे नापसन्द करते थे। ध्यान रहे कि तब नरमपंथी गुट कांग्रेस में हावी था और चरमपंथियों के उभार की केवल आहट आना शुरू हुई थी। चरमपंथी गुट के प्रमुख नेता तिलक अपने राजनीतिक दौर की शुरुआत में ही अंग्रेजों द्वारा राष्ट्रद्रोह के आरोप में जेल में डाले जा चुके थे। अपनी कार्यवाहियों के चलते चरमपंथी कांग्रेस में अलगाव में डाले जा चुके थे, हालांकि खुद कांग्रेस भी इस सवाल पर ध्रुवीकृत हो चुकी थी। दूसरी ओर चरमपंथी नेताओं द्वारा नरमपंथियों की राजनीतिक सीमाओं की आलोचना तो बिलकुल सटीक थी, लेकिन वे कांग्रेस के लिए अपने द्वारा प्रस्तावित रैडिकल तौर-तरीकों और उद्देश्यों को मूर्त रूप दे पाने में अब तक स्वयं असफल रहे थे। इस रैडिकल रास्ते में भारत में अंग्रेजी राज असल बीमारी है इस बात का खुला दावा करना और अंग्रेजी राज के खिलाफ मुक्ति अभियान की लड़ाई छेड़ने के लिए भारतीय जनता को गोलबन्द करना शामिल था। बहरहाल, कुल मिलाकर उस संधिकाल में एक राजनीतिक खालीपन पनप रहा था, जिसे क्रान्तिकारी आतंकवाद ने आगे बढ़कर भर दिया था। फौरन कुछ कर गुजरने की भावना युगान्तर अखबार के पन्नों से झलकती है। पूर्वी बंगाल के बारीसाल में आयोजित एक शान्तिपूर्ण सम्मेलन पर पुलिस के बर्बर हमले के बारे में लिखते हुए

अखबार अपने इस तार्किक आह्वान तक पहुंच जाता हैः भारत में बसने वाले तीस करोड़ लोगों को अपने साठ करोड़ हाथ उठा लेने चाहिये। ताकत का जवाब ताकत से दिया जाना चाहिये।

दुर्भाग्य से फौरन कुछ कर गुजरने के इस आवेग के साथ एक बेहद सरलीकृत वैचारिक परिप्रेक्ष्य व रणनीति ही जुड़ पाई थी। इस आन्दोलन के नेताओं को इस बात का एहसास था कि जन उभार संगठित करना एक लम्बी व कष्ट साध्य प्रक्रिया है। सेना में विद्रोह संगठित करने की सम्भावनाओं पर भी उन्होंने विचार किया था। लेकिन उन्होंने इन दोनों उद्देश्यों को दूरगामी कार्यभार मानकर भविष्य के लिए स्थगित कर दिया था। अंग्रेज शासन में भय का संचार करने के लिए फिलहाल कुख्यात अंग्रेज अफसरों के सफाये की कार्यनीति को अपना लिया गया। सोचा गया था कि इन कार्यवाहियों से लोगों में देशभक्ति का ज्वार पैदा होगा और आम जनता के दिलो-दिमाग से सत्ता का भय मिट जाएगा। यह भी सोचा गया था कि क्रान्तिकारी अगर गिरफ्तार भी होंगे तो उनके अदालती मुकदमों से क्रान्तिकारी संदेश दूर-दूर तक फैलाया जा सकेगा। इसलिए इस आन्दोलन की मांग ऐसे युवा थे जो अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार हों। यह रणनीति युवाओं में छिपे वीर-भाव को जगाती थी। राजनीतिक संघर्ष का यह तरीका आयरलैन्ड के राष्ट्रवादियों व और रूसी निहिलिस्टों (नकारवादियों) द्वारा आजमाया जा चुका था। काफी संभव है कि भारत का यह क्रान्तिकारी आन्दोलन इस तरह के अपने समकालीन आन्दोलनों से ही प्रेरित रहा होगा।

अरबिन्द घोष के लेखन में इस दौर की नब्ज और क्रान्तिकारियों की दृष्टि की गूंज मिलती है। अप्रैल **1908** में उन्होंने लिखा था, ***'भारत माता कोई युक्ति, कोई योजना, कोई तरीका नहीं मांगती। युक्ति, योजनायें व तरीके वह स्वयं प्रस्तुत करेगी....'।***

इस आन्दोलन से क्या हासिल हुआ**?** मौत को धता बताने वाली युवाओं की बहादुरी अंग्रेज शासन को दहलाने में कुछ हद तक जरूर सफल हुई थी। नव-शिक्षित भारतीयों के दिल भी इसने जीते थे। भारत के मध्यवर्गीय साहित्यिक दायरे के बाहर भी आन्दोलन ने अपने प्रति आदर व विस्मय का भाव जगाया था। खुदीराम बोस और उसके बलिदान की गाथा लोकगीतों में गाई जा रही थी। उन्हें फांसी पर चढ़ाये जाने के काफी बाद उनकी बहादुरी और बलिदान की करुण गाथा भिखारियों के मुँह से सड़कों पर गूँजती थी। क्रान्तिकारी आन्दोलन की हरेक घटना न जाने कितनी कहानियों व कविताओं को जन्म दे रही थी। देशभक्ति के गीतों का खजाना लबालब हो चुका था। इस आन्दोलन की एक कम चर्चित लेकिन महत्वपूर्ण सांस्कृतिक उपलब्धि यह भी है कि इसने अनेक लोगों को क्षेत्रीय व स्थानीय इतिहास**,** लोक व देशज परम्पराओं को खोजने की ओर उन्मुख किया था। जे.सी. बोस और पी.सी. राय की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ**,** अबनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित पेन्टिंग की कलकत्ता शैली इस दौर के माहौल और घटनाओं से प्रभावित थीं। क्रान्तिकारी आन्दोलन ने रैडिकल पत्रकारिता की संस्कृति का भी आगाज़ किया था। भारत में और भारत की धरती से बाहर सक्रिय हरेक क्रान्तिकारी समूह अखबार निकालता था**,** जिसकी वजह से सार्वजनिक लेखन की संस्कृति फल-फूल रही थी। हालांकि इस मोर्चे पर भी क्रान्तिकारियों को लड़ना पड़ता था क्योंकि अंग्रेज सरकार उन लोगों के दमन पर भी उतारू थी जो क्रान्तिकारी आन्दोलन से केवल सहानुभूति रखते थे। इस तरह हम कह सकते हैं कि अपना अभीष्ठ लक्ष्य हासिल करने में क्रान्तिकारी अकसर असफल हुए थे**,** लेकिन भारतीय जनता ने

उनके ध्येय को पूरी तरह से भुलाया न था। उन्होंने अपने समय में राष्ट्र प्रेम का जो भाव जगाया था, बाद के दशकों में भी उसकी अलग जलती रही।

क्रान्तिकारी आन्दोलन की इन तमाम खूबियों के बावजूद तथ्य यही है कि यह आन्दोलन शहरों में बड़े विद्रोह नहीं संगठित कर सका था। ग्रामीण इलाकों में भी यह कोई टिकाऊ छापामार लड़ाई नहीं छेड़ सका था। अपनी पुस्तक आधुनिक भारत में सुमित सरकार इन असफलताओं के कुछेक कारणों का जिक्र करते हैं। उनके अनुसार शुरुआती दौर के अनेक गुप्त समूह बेहद धार्मिक थे और उनके सिद्धान्त गीता के निष्काम कर्म जैसी अवधारणाओं से प्रेरित रहते थे। धार्मिकता के इस स्वर के हावी रहने के कारण मुसलमान जनता इनके आन्दोलन से दूर रहती थी, और कभी-कभी खिलाफ भी चली जाया करती थी। एक क्रान्तिकारी हेमचन्द्र कानूनगो ने अपने बाद के जीवन में तो यह भी कहा है कि इस तरह के सिद्धान्त एक शहीदी पंथ को भी बढ़ावा देते थे। यह प्रवृत्ति जन सम्पर्क बढ़ाने वाले कारगर कार्यक्रम चलाए जाने की इजाजत नहीं देती थी। क्रान्तिकारियों की सामाजिक पृष्ठभूमि स्वयं उन सीमाओं को प्रदर्शित करती है जो इस आन्दोलन को जकड़े थी। **1918** में **186** सजायाफ्ता क्रान्तिकारियों की जो सरकारी सूची बनी थी, उसमें **165** क्रान्तिकारी केवल तीन मुख्य सवर्ण - ब्राह्मण, कायस्थ और वैद्य- जातियों के थे।

हमने अब तक की चर्चा में देखा है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन की कार्यवाहियां मुख्यतया बंगाल में केन्द्रित थीं। **1905** के बंगाल विभाजन को इसका कारण माना जा सकता है। उसने बंगाल में एक जनआन्दोलन के बतौर स्वदेशी आन्दोलन का ज्वार ला दिया था और राज्य के क्रान्तिकारी आन्दोलन को और तीखा कर दिया था। हालांकि इस दौर में अतिवाद बंगाल तक सीमित नहीं था। अंग्रेज शासन से प्रत्यक्ष या परोक्ष ताल्लुक रखने वाले मुद्दों पर अनेक जन आन्दोलन व जन गोलबन्दियां अन्य प्रान्तों में भी हुई थीं, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद के दौर पर दूरगामी असर डाला है।

स्वमूल्यांकित

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ढाका अनुशीलन समिति का संचालन पुलिन दास करते थे।
2. **1912** को वीडी सावरकर और सचिन सान्याल ने तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग पर हमला किया था।
3. रास बिहारी बोस ने **1904** में क्रान्तिकारियों के एक गुप्त संगठन अभिनव भारत का गठन किया था।
4. अबनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित पेन्टिंग की कलकत्ता शैली इस दौर के माहौल और घटनाओं से प्रभावित थीं।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. **1906** में कलकत्ता अनुशीलन के ..... ने साप्ताहिक युगान्तर का प्रकाशन शुरू किया।
2. **2** जून **1908** की ..... ढाका अनुशीलन का सबसे पहला साहसिक अभियान था।

3. ..... और..... की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ इस दौर के माहौल और घटनाओं से प्रभावित थीं।

5.5 अन्य प्रान्तों में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

5.5.1 उत्तर प्रदेश

तत्कालीन संयुक्त प्रान्त का बनारस शहर क्रान्तिकारी गतिविधियों का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। वहां का मराठी व बंगाली समुदाय क्रान्तिकारी उत्साह में अग्रणी था। एक क्रान्तिकारी समूह मुखोदाचरण समाध्याय के नेतृत्व में उभरा था, जो उस वक्त **1907** में अपने पूर्व सम्पादक के निधन के बाद एक सांध्य अखबार का संपादन संभाल रहे थे। यह समूह कलकत्ता से करीबी सम्पर्क बनाये रखता था। इस क्रान्तिकारी समूह ने ही सचीन्द्रनाथ सान्याल के रूप में एक असाधारण नेता देश को दिया था। उस वक्त छात्र के बतौर बनारस में रहने वाले बाद के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सुन्दरलाल भी इसी समूह से जुड़े थे। बनारस की अपनी भौगोलिक स्थिति की वजह से भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में महत्वपूर्ण हो गया था। वह बंगाल व पंजाब के क्रान्तिकारी समूहों का वह संगम स्थल था।

5.5.2 गुजरात

बॉम्बे प्रेसीडेन्सी के गुजराती भाषी इलाकों में कांग्रेस के नरमपंथी नेताओं की मौजूदगी के कारण वहां अतिवाद का विस्तार नहीं हो सका था। इसमें तब्दीली तब आई जब **1907** में कांग्रेस के नरमपंथी नेता फिरोज शाह मेहता की कोशिशों की बदौलत सूरत में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन आयोजित हुआ। अधिवेशन में लाल-बाल-पाल की प्रसिद्ध तिकड़ी (लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और बिपिन चन्द्र पाल) मौजूद थी। उनके उत्तेजक भाषणों से दो युवा गुजराती किसान प्रतिनिधि, कुंवर जी और कल्यानजी मेहता इस कदर प्रभावित हुए कि उन्होंने गुजरात लौटकर पाटीदार युवक मंडल की स्थापना कर डाली। बाद में, **1920** के दशक में बारदोली के गांधीवादी सत्याग्रह के संचालन में इस संगठन ने निर्णायक भूमिका अदा की थी।

5.5.3 पंजाब

पंजाब में **1890** के बाद बैंक, बीमा व शिक्षा के क्षेत्रों में स्वदेशी गतिविधियां शुरू हो गई थीं। पंजाब के स्थापित व्यापारी समुदाय, खत्री, अरोड़ा और अग्रवाल इन पहलकदमियों का नेतृत्व करते थे। **1904** और **1907** के बीच यह प्रान्त अतिवाद की तरफ झुकने लगा। लाला लाजपत राय और हन्स राज ने एक अखबार पंजाबी शुरू किया था, हालांकि इस पहल के पीछे कांग्रेसी धड़ेबाजी भी एक वजह थी। अखबार का ध्येय वाक्य 'हर कीमत पर स्वयं सेवा' था। भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के नस्लवादी दुर्व्यवहार के खिलाफ लिखने व आक्रोश व्यक्त करने के कारण सरकार ने **1907** में पंजाबी पर मुकदमा लाद दिया। लेकिन इस मुकदमे की तारीख पर पंजाब में प्रदर्शन भड़क उठे। फरवरी **1907** में लाहौर में गोरों पर छिटपुट हमले भी हुए। विरोध की ऐसी कार्यवाहियां मई में भी जारी रहीं। हालांकि सरकार उस वक्त ल्यालपुर के इर्दगिर्द की नहर कॉलोनियों में फैले असन्तोष पर ज्यादा ध्यान दे रही थी। नहर कालोनियां अंग्रेज औपनिवेशिक

अफसरों की नौकरशाही व तानाशाही से त्रस्त थे, जिसमें केवल गोरे अफसर थे। अब सरकार सरकार का नया चेनाब कॉलोनी विधेयक जनता पर अपना फन्दा और कसने वाला था। विधेयक **1906** में लागू किया गया था। नहर प्रशासन के खिलाफ प्रतिरोध कार्यवाहियां **1903** से ही आयोजित हो रही थीं। इन आयोजनों में अग्रणी भूमिका निभाने वाले सिराज-उद-दीन अहमद जमींदार नाम की एक पत्रिका निकाला करते थे। यह पत्रिका मालिक-किसानों के मंच में तब्दील हो गई थी। आन्दोलनों में चेनाब नहर कॉलोनी के हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी की भागीदारी होने से वह साम्प्रदायिक एकता की शानदार मिसाल कायम कर रहा था। सरकार के जनविरोधी कदमों के न थमने के कारण प्रतिवाद और तीखा होता गया। **1906** नवम्बर में बड़ी दोआब क्षेत्र में नहर की जल-दरों में **25** फीसदी का इजाफा कर दिया गया। रावलपिंडी इलाके में भी भू-राजस्व की दरें बढ़ा दी गईं। सरकार की इन जन विरोधी कार्यवाहियों के जवाब में राजस्व-लिपिक हड़ताल पर चले गए। फिर कॉलोनी से गुजरने वाली उत्तर-पश्चिमी रेल के सभी कर्मचारी हड़ताल पर चले गए। पंजाब में (भगत सिंह के चाचा) अजीत सिंह उस वक्त बेहद सक्रिय थे, और वे लाहौर में अंजुमन-ए-मोहिब्बन-ए-वतन की स्थापना कर चुके थे। वे भारत माता पत्रिका का भी प्रकाशन किया करते थे। **1907** में इलाके के किसानों को संगठित करके भू-राजस्व और जल-शुल्क न अदा करने का अभियान चलाने में यह पत्रिका सक्रिय भूमिका अदा कर रही थी। पत्रिका द्वारा साम्प्रदायिक एकता बनाए रखने के कारगर प्रयासों ने सरकार को और भी खफा कर रखा था। इसी साल सिपाहियों द्वारा फिरोजपुर की विद्रोही बैठकों में शामिल होने की खबरें भी आ रही थीं। रावलपिंडी में भी व्यापक प्रतिवाद हो रहे थे, शस्त्रागार के मुसलमानों और सिखों द्वारा हड़ताल छेड दी गई थी, अजीत सिंह की सभा करने से वकीलों को मना करने के कारण अंग्रेज साहबों के बंगलों पर हमले होने लगे। इन कार्यवाहियों को नियन्त्रित करने के मकसद से सरकार ने राजनीतिक बैठकों पर पाबन्दी जड़ दी, और अजीत सिंह को गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया। ध्यान देने की बात है कि बाद में अजीत सिंह, और मुरादाबाद के सूफी अम्बा प्रसाद, उर्दू के क्रान्तिकारी कवि लाल चन्द 'फलक', दिल्ली के भाई परमानन्द और हर दयाल पूर्ण क्रान्तिकारी बनने के रास्ते पर आगे बढ़ गए। **1907** के बाद सरकार की तरफ से कुछ रियायतों की पेशकश होने के बाद से पंजाब का चरमपंथी आन्दोलन नरम पड़ गया। और भी दुर्भाग्य की यह हुई कि उसके बाद क्रान्तिकारी राजनीति को रंगमंच से उतारकर साम्प्रदायिक राजनीति पंजाब में हावी हो गई।

5.5.4 मद्रास

मद्रास प्रेसीडेन्सी के तटीय क्षेत्र राज्य में अतिवादी हलचलों के केन्द्र थे। इस उभार का एक और केन्द्र आन्ध्र का सुदूरवर्ती दक्षिणी जिला तिरुनेलवेली था। **1906** के बाद से ही बंगाल के आन्दोलनों के समर्थन में राजामुन्द्री, काकीनाड़ा और मसुलीपटनम जैसे आन्ध्र के तटीय शहरों में सभायें की जाने लगी थीं। ये गतिविधियां बढ़ते-बढ़ते वन्देमातरम नाम का एक आन्दोलन बन गईं। अप्रैल **1907** में बिपिन चन्द्र पाल ने आन्ध्र का दौरा किया, जिसके बाद यह आन्दोलन

और तेज हो गया। चरमपंथी बिपिन पाल को आन्ध्र में बुलाने वाले नेता एम कृष्णा राव थे। अंग्रेज सरकार इसके जवाब में दमन पर उतारू हो गई। जनता भी कहां पीछे रहने वाली थी। **31** मई **1906** को काकीनाड़ा में गोरों के एक क्लब पर गुस्साई भीड़ ने हमला कर दिया। इसका तात्कालिक कारण एक बच्चे के बन्दे मातरम कहने पर अंग्रेज अधिकारी द्वारा उस पर किया गया हमला था। आन्दोलन के इस दौर में तेलुगू भाषा, साहित्य, व उसके इतिहास के प्रति एक नये किस्म का उत्साह फैल रहा था। आन्ध्र के दक्षिणी जिले तिरुनेलवेली में जी सुब्रमण्यम अय्यर स्वदेशी के प्रचार की खातिर लगातार दौरा कर रहे थे। तूतीकोरीन में वी.ओ. चिदम्बरम पिल्लई भी अपनी कार्यवाहियों से एक अतिवादी नेता के बतौर चर्चित हो चुके थे। जनवरी **1908** में सुब्रमण्यम सिवा के रूप में इस आन्दोलन को एक मजदूर पृष्ठभूमि वाले जुझारू नेता मिल गए थे। वे मदुरा के थे। सिवा प्रायः प्रतिदिन तूतीकोरीन के तट पर सभायें करते और लोगों से बहिष्कार की अपील करते थे। पुलिस अधिकारियों की रपटें उन्हें हिंसक रास्तों की भी तरफदारी करने वाला बताती थीं। फरवरी **1908** के बाद वे अपने भाषणों में मजदूरों को सीधे तौर पर सम्बोधित करने लगे थे, और अपने सम्बोधनों में रूसी क्रान्ति के बारे में बताते हुए उस क्रान्ति से मजदूरों को होने वाले फायदे लोगों को बताया करते थे। अंग्रेजी सरकार इन सभाओं को रोकने लगी। विरोध में वहां के व्यापारियों ने दूकानें बन्द कर दीं, नगरपालिका के अलावा दूसरे सफाई कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी, तूतीकोरीन के बग्घी चालक भी हड़ताल पर चले गए। यही नहीं, तिरुनेलवेली नगरपालिका के दफ्तरों, कचहरी ओर पुलिस थानों पर हमले भी हुए। सरकार का दमन भी तेज हो गया, **11-13** मार्च **1908** को दोनों शहरों में पुलिस ने लोगों पर गोलियां बरसायीं। इस घटना के बाद सिवा और पिल्लई इलाके से बाहर चले गए। तिरुनेलवेली के उग्र तत्वों ने एक आतंकवादी दल का गठन कर लिया। जून **1911** में इस दल ने वहां के जिला मजिस्टेट ऐशे की हत्या कर दी। तमिल क्रान्तिकारियों का भी एक छोटा समूह भी इस इलाके में सक्रिय रहता था। गौरतलब है कि इस समूह में बाद के मशहूर महाकवि सुब्रमण्यम भारती भी हुआ करते थे। हालांकि उनके साथी वी.वी.एस. अiयर बाद में सावरकर के शिष्य बन गए थे।

5.5.5 महाराष्ट्र

उन दिनों महाराष्ट्र बॉम्बे प्रेसीडेन्सी में हुआ करता था, और उन्नीसवीं सदी के अन्त तक वहां विभिन्न संगठनों की सरपरस्ती में कई किस्म की राजनीतिक धारायें राजनीतिक गोलबन्दी करने लगी थीं। लेकिन सड़कों पर जनता का पहला बड़ा आन्दोलन **1908** में तब देखा गया जब बाल गंगाधर तिलक पर अंग्रेज सरकार राजद्रोह का मुकदमा चला रही थी। गौरतलब है कि सड़क पर उतरे लोगों में औद्योगिक मजदूर अग्रणी थे। **13** जुलाई को छिटपुट हड़तालें, पत्थरबाजी, व पुलिस से भिड़ने की कार्यवाहियां हुईं। यह मुकदमे का पहला दिन था। बाद में तो जन आक्रोश इतना बढ़ गया कि स्थितियां नियन्त्रित करने के लिए सरकार सेना बुलाने पर मजबूर हो गई। **22** जुलाई को तिलक को सजा सुना दी गई, जिसके बाद मुल्जी जेथा बजार के कपड़ा व्यापारी छह

दिन की हड़ताल पर चले गए। बम्बई के मजदूर भी **28** जुलाई तक कार्य बहिष्कार की घोषणा करते हुए हड़ताल में शामिल हो गए। बम्बई की **85** में से **76** मिलों में कामकाज ठप हो गया। उधर पुलिस और सेना द्वारा कई बार गोलियां चलाई गईं, जिनमें सरकारी रपटों के मुताबिक **16** लोग मारे गये थे और **43** घायल हुये थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. कुंवर जी और कल्यानजी मेहता ने पाटीदार युवक मंडल की स्थापना की थी।
2. सिराज-उद-दीन अहमद , **जमींदार** नाम की एक पत्रिका निकालते थे ।
3. **1906** नवम्बर में बड़ी दोआब क्षेत्र में नहर की जल-दरों में **25** फीसदी का इजाफा कर दिया गया।
4. चरमपंथी बिपिन पाल को आन्ध्र में बुलाने वाले नेता एम कृष्णा राव थे।

5.6 सारांश

यहां यह एक बार दोहराने की जरूरत है कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के शुरुआती दौर का यह क्रान्तिकारी आन्दोलन भारतीय जनता की दुर्दशा और अंग्रेजी शासन के बढ़ते दमन-उत्पीड़न से उपजी एक उतावली प्रतिक्रया थी, जिसके नायक मुख्यतया देश के शिक्षित युवा थे। यह राष्ट्र की दुर्दशा और उसके प्रति बढ़ती जागरूकता का प्रतिबिम्ब थी। जाहिरा तौर पर इस प्रतिक्रया में वह गुस्सा भी था, जिसका उभरना राष्ट्र की दुर्दशा के प्रति इस जागरूकता के बाद लाजिमी था। यह आक्रोश फौरी कार्यवाहियां मांग रहा था, और युवा इस दिशा में आगे बढ़ गए। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति देश के युवाओं के लगाव का यही राज था। लेकिन यह आवेग ज्यादा दिन टिक नहीं सका। संसाधनों व संयोजन की कमी, जनता में व्यापक आधार के अभाव ने आन्दोलन को टिकाऊ नहीं बनने दिया। नतीजतन यह आन्दोलन भविष्य की विजय का स्वप्न लिए बलिदान की एक गाथा बन गया। समग्र तौर पर देखें तो यह आन्दोलन एक टिकाऊ जन आन्दोलन की जरूरत के प्रति देश को जगाने वाला साबित हुआ और बाद के राष्ट्रीय आन्दोलन में आत्म-बलिदान का प्रेरणा स्रोत बन गया। शहीदों की कवितायें और गीत हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की दशकों तक खिंची जंग में जनता को सतत उत्साहित करते रहे।

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

आप्रवासी – दूसरे देश में निवास करने वाला
जन गोलबन्दी – लोगों को इकट्ठा करना
सांध्य अखबार- शाम को प्रकाशित होने वाला अखबार

5.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 5.4 के प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य

2. असत्य

3. असत्य

4. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त

2. बारा डकैती

3.जे.सी. बोस पी.सी. राय

इकाई 5.5 के प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य

2. सत्य

3. सत्य

4. सत्य

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

Sumit Sarkar, *Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay, *From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Sumit Sarkar, *Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay, *From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

J.C. Ker, *Political Trouble in India 1907-1917,* Calcutta, 1917

Hirendranath Mukherjee, *India Struggles for Freedom,* Bombay, 1948

Haridas and Urna Mukherjee, *India's Fight for Freedom or the Swadeshi Movement 1905-1906,* Calcutta, 1958

R.C. Majumdar, *History of Freedom Movement in India*, Vol. I, Calcutta 1962

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के विभिन्न प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियों पर चर्चा कीजिए।

इकाई छह

विदेशों में क्रान्तिकारी कार्य और क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ

6.4 प्रवासी भारतीयों के अनुभव और क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ

6.5 प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

6.6 सारांश

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

6.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप में आने वाले क्रान्तिकारी आवेग का विस्तार भारत की भौगोलिक सीमाओं के पार भी पहुँचा था। भारत की धरती से बाहर आजादी के स्वप्न के लिए समर्पित जिन समूहों का उदय हुआ था, वे दो तरह के थे। कुछ तो ऐसे थे जो भारत में रहते हुए क्रान्ति के लड़ाकू बन चुके थे, और अपनी गतिविधियों को बढ़ाने के सुनियोजित क्रम में विदेश गए थे। उनके प्रवासी बनने का मकसद मुख्यतया सुरक्षित आश्रय खोजने, हथियारों और प्रशिक्षण के लिए मदद तलाशने और अपने विचारों को प्रकाशित कर पाना था। लेकिन क्रान्तिकारियों का दूसरा समूह इस आन्दोलन के पहले से ही विदेश में प्रवासी हो चुका था और इसी दौरान नस्लवाद व भेदभाव से लड़ने के लिए उसने खुद को संगठित भी किया था। अन्ततः इस समूह में भी भारत

को अंग्रेजों से आजाद कराने की आकांक्षायें जोर मारने लगी थीं। यही वह पृष्ठभूमि है जिसके आलोक में हमें भारत से बाहर की क्रान्तिकारी गतिविधियों और आन्दोलनों समझने की जरूरत है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारतीयों के विदेशों में क्रान्तिकारी कार्य और क्रान्तिकारी आन्दोलन के मूल्यांकन से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से परिचित हो सकेंगे :

- भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ
- प्रवासी भारतीयों के अनुभव और क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ
- प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ
- क्रान्तिकारी आन्दोलन और विदेशी भूमि पर क्रान्तिकारी कार्यवाहियों का मूल्यांकन

6.3 भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ

1905 में श्यामजी कृष्णवर्मा लंदन में रहते हुए भारतीय छात्रों के एक केन्द्र (इन्डिया हाउस), एक पत्रिका (इन्डियन सोशोलाजिस्ट), एक भारतीय होम रूल सोसाइटी और भारत से युवाओं को आकर्षित करने के लिए एक छात्रवृत्ति योजना की शुरुआत कर चुके थे। लेकिन उनका जुझारूपन मुख्यतया सैद्धान्तिक सक्रियता तक सीमित था। **1907** में श्यामजी कृष्णवर्मा के इन संस्थानों का संचालन वी.डी. सावरकर और उनके नासिक गुट के हाथ में स्थानान्तरित हो गया। लार्ड कर्जन-वाइली की हत्या करने वाले मदन लाल ढींगरा इसी समूह से जुड़े थे। क्रान्तिकारियों की इस कार्यवाही के बाद सावरकर गिरफ्तार कर लिये गए, भारत प्रत्यर्पित किए गए, और फिर नासिक षड़यन्त्र मामले में सरकार द्वारा आजीवन निर्वासित कर दिये गए। इस तरह क्रान्तिकारिता के लंदन केन्द्र की आग बुझ गई। इसके बाद क्रान्तिकारी कार्यवाहियों के नए केन्द्र यूरोपीय महाद्वीप में उभरना शुरू हुए। पेरिस में पारसी क्रान्तिकारी मैडम कामा ने बन्दे मातरम का प्रकाशन करना शुरू कर दिया। वे फ्रांस के समाजवादी क्रान्तिकारी ज्यां लांगे से करीबी सम्बन्ध भी विकसित करने में कामयाब हुई थीं। इसके अलावा, **1909** के बाद के विशेष अन्तर्राष्ट्रीय माहौल में, ब्रिटेन और जर्मनर के रिश्ते में आई गिरावट का फायदा उठाते हुए वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भी बर्लिन से अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ शुरू कर चुके थे।

बंगाल के हेमचन्द्र कानूनगो भी पेरिस पहुँच चुके थे। एक रूसी आप्रवासी से कुछ सैनिक व राजनीतिक प्रशिक्षण हासिल करने के बाद वे वापस भारत लौटे। कानूनगो के इस अनुभव का फायदा उठाते हुए उनकी भारत वापसी के बाद कलकत्ता की अनुशीलन समिति ने बम बनाने का एक कारखाना लगाया था। क्रान्तिकारी समूहों ने आयरलैन्ड के क्रान्तिकारियों के साथ भी करीबी सम्पर्क स्थापित किए गए थे। उधर, इन समूहों के बीच जी.एफ. फ्रीमैन द्वारा न्यूयार्क से प्रकाशित गैलिक अमरीकन का प्रसार होने लगा था। इसके अलावा इन्डियन सोशालॉजिस्ट, मैडम कामा का बन्दे मातरम, बर्लिन से चट्टोपाध्याय द्वारा प्रकाशित तलवार, वैंकूवर से तारकनाथ दास द्वारा प्रकाशित फ्री हिन्दुस्तान और प्रसिद्ध गदर जैसे अखबार भी पढ़े और

वितरित किए जा रहे थे। भारतीय क्रान्तिकारियों के अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन के साथ भी नजदीकी रिश्ते बन चुके थे। लंदन में ब्रिटिश मार्क्सिस्ट सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशन के हिन्डमैन लंदन में इन्डिया हाउस की बैठकों को सम्बोधित किया करते थे। उधर मैडम कामा ने एक और महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए अगस्त **1907** में द्वितीय इन्टरनेशनल की स्टुटगार्ट कांग्रेस में आजाद भारत का झन्डा फहराया था। दिल्ली के एक छात्र, हरदयाल, संयुक्त राज्य अमरीका के सैन फ्रांसिस्को शहर पहुँचकर अन्तर्राष्ट्रीय मजदूरों के अराजकतावादी-सिंडीकेटवादी धड़े के सचिव का काम किया करते थे।

6.4 प्रवासी भारतीयों के अनुभव और क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ

अमरीका के ब्रिटिश कोलम्बिया और प्रशान्त तट पर भारतीयों के क्रान्तिकारी आन्दोलन अपना जनाधार बना चुका था। यह स्थित ब्रिटेन और यूरोप में जनता से अलग-थलग रहने वाले क्रान्तिकारी समूहों की हकीकत से बिलकुल अलग थी। अमरीका के इस इलाके में **1914** तक तकरीबन **15,000** भारतीय बस चुके थे, जिनमें अधिकांशतया सिख थे। ज्यादातर सिख पंजाब के होशियारपुर ओर जालन्धर जिलों से वहां पहुँचे थे। पंजाब के इन दो अत्यन्त सघन आबादी वाले जिलों से लोग रोजगार की तलाश में मलेशिया, फिजी और अमरीका की ओर पलायन कर रहे थे। अपनी इस प्रवास-यात्रा का खर्च वे अकसर अपने जीवन भर की सम्पत्ति व कमाई गिरवी रखने के बाद जुटा पाया करते थे। लेकिन जीवन भर की कमाई दाँव पर लगाने के बाद जब वे सपनों की नई दुनिया पहुंचते, तो वहाँ अवांछित होने का एहसास उन्हें हलाल करने लगता था। मेजबान विदेशी समाज प्रवासी भारतीयों के रहन-सहन और तौर तरीकों पर नाक-भौं सिकोड़ता था। लेकिन इससे भी बड़ी बात यह थी कि उनके वहाँ आगमन के कारण रोजगार की प्रतिद्वन्द्विता गहरा जाती थी, जो गोरे मजदूरों और उनके संघों को प्रवासी भारतीयों से खफा कर देती थी। नतीजतन, वे भारतीयों के प्रवेश के खिलाफ आन्दोलन छेड़ रहे थे, जिनको राजनीतिक समर्थन हासिल करने की गरज के चलते वहाँ के नेता भी समर्थन कर रहे थे।

संयुक्त राज्य अमरीका में भारतीयों के इस बहिष्कार और उन्हें वहाँ प्रवेश देने की खिलाफत का भारतीय सेक्रेटरी ऑफ स्टेट परोक्ष तौर पर समर्थन कर रहे थे। उन्हें यह भरोसा था कि अमरीकी गोरों के साथ भारतीयों की करीबी पहचान का बनना अंग्रेजी रुतबे के लिये अच्छा साबित नहीं होगा। इसके अलावा उन्हें यह भी चिन्ता सता रही थी कि दूसरे महाद्वीप का प्रवास उन्हें समाजवादी विचारों से परिचित करा देगा, और नई जगहों पर उनसे किया जाने वाला नस्लीय भेदभाव बदले में भारतीय राष्ट्रवादी लड़ाई को और भड़काएगा। अंग्रेजों की इन आशंकाओं के चलते **1908** में प्रवास के लिए कनाड़ा में भारतीयों के प्रवेश पर एक तरह की कारगर रोक लग चुकी थी। यही वे हालात थे जब एक भारतीय छात्र और उत्तरी अमरीका के पहले भारतीय नेता तारक नाथ दास ने फ्री हिन्दुस्तान का प्रकाशन शुरू किया था।

इन पाबन्दियों ने भारतीयों की राजनीतिक गतिविधियों को और तेज कर दिया। उनकी आवाज लड़ाकू और क्रान्तिकारी होती गई। **1907** में, पश्चिमी तट पर बसे एक निर्वासित भारतीय, रामनाथ पुरी ने सर्कुलर-ए-आजादी जारी करते हुए उस वक्त भारत में चल रहे स्वदेशी आन्दोलन को समर्थन देने का वचन दिया। जी.डी.कुमार ने वैंकूवर में स्वदेश सेवक गृह स्थापित किया, यह काफी हद तक लंदन के इन्डिया हाउस जैसा ही था। इसके अलावा उन्होंने गुरुमुखी में स्वदेश

सेवक नाम का अखबार भी निकाला था। यह अखबार भारतीयों में सामाजिक सुधार किए जाने की वकालत करता था। इसने भारतीय सैनिकों से अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने की अपील भी की थी। सरकार के लिए जी.डी.कुमार और तारकनाथ को कनाडा से बाहर निकाल देने के लिए इतनी गतिविधियाँ काफी थीं। उनका अगला पड़ाव संयुक्त राज्य अमरीका का सियाटेल शहर बना, जहाँ पहुँचकर उन्होंने यूनाइटेड इन्डिया हाउस बनाकर अपना काम जारी रखा। हरेक शनिवार **25** भारतीय मजूदरों के समूह के बीच वे भाषण दिया करते थे। उन्होंने रैडिकल राष्ट्रवादी छात्रों के अलावा खालसा दीवान समाज के साथ भी सम्पर्क स्थापित किया था। **1913** में, औपनिवेशिक मामलों के सचिव से लंदन में और भारत में वायसराय व दूसरे अधिकारियों से मिलने के लिये इनकी तरफ से एक शिष्ट मंडल भेजा गया था। ब्रिटेन में सचिव से तो वे मुलाकात नहीं कर सके, लेकिन वायसराय और पंजाब के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर से मिलने में वे जरूर कामयाब हुए थे। इन बैठकों का कोई महत्व तो न था लेकिन लुधियाना, अम्बाला, फिरोजपुर, जालन्धर, ल्यालपुर, गुजरांवाला, सियालकोट और शिमला में उनके द्वारा की गई जनसभायें जरूर महत्वपूर्ण थीं। अखबारी दुनिया ने भी उन्हें काफी समर्थन दिया था।

इन तरह संयुक्त राज्य अमरीका और कनाड़ा में क्रान्तिकारियों का अभियान निरन्तर चलता रहा। सभाओं और अखबारों के प्रकाशन ने वहाँ के प्रवासी भारतीयों के बीच एकजुटता बढ़ाने और गहन राष्ट्रीय भावनायें पैदा करने में बड़ी भूमिका अदा की थी। फिर भी यह आन्दोलन ब्रिटेन या भारत की सरकार द्वारा लगाई गई पाबन्दियों को वापस कराने में सफल न हो सका। यह असफलता इस आन्दोलन के अन्ततः क्रान्तिकारी आन्दोलन की ओर मुड़ने का कारण बन गई। **1913** में एक सिख ग्रन्थी, भगवान सिंह वैंकूवर पहुँचे। वे पहले हांगकांग और वर्तमान मलेशिया में काम कर चुके थे। भगवान सिंह वहाँ हिंसा के जरिये अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने का खुला प्रचार करने लगे। वे लोगों को बन्दे मातरम कहकर सलाम करने की अपील किया करते थे। तीन महीने बाद भगवान सिंह कनाड़ा से बाहर कर दिए गए। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका क्रान्तिकारियों का नया अड्डा बन गया। हरदयाल अप्रैल **1911** में कैलिफोर्निया रहने लगे थे। वे कुछ समय तक स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षण करते रहे। **1912** की गर्मियों में वे बुद्धिजीवियों, क्रान्तिकारियों और मजदूरों के विभिन्न समूहों के बीच अराजकतावादी-सिंडीकेटवादी आन्दोलनों पर व्याख्यान देने लगे। **23** दिसम्बर **1912** में लार्ड हार्डिंग पर हमले की कार्यवाही के बाद वे भारतीय आजादी की लड़ाई में दिलचस्पी लेने लगे। भारत में रासबिहारी बोस और सचिन सान्याल द्वारा की गई यह कार्यवाही हालाँकि असफल रही थी, और उसके बाद दोनों को देश से भागकर बाहर जाना पड़ा था। लेकिन इस घटना ने अमरीका में हरदयाल को आश्वस्त कर दिया कि क्रान्तिकारी तरीकों के जरिए भारत से अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंका जा सकता है। युगान्तर सर्कुलर निकालकर उन्होंने इस घटना का स्वागत किया। मई **1913** के फौरन बाद पोर्टलैन्ड में एक 'हिन्दी संघ' बना लिया गया। लाला हरदयाल इस आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए तैयार हो गए। इस संघ की पहली बैठक कांशी राम जी के घर पर हुई, जिसमें भाई परमानन्द, सोहन सिंह भकना और हरनाम सिंह 'तुंडीलाट' शामिल हुए थे। उन्होंने लोगों को यह समझाया कि जब तक भारत आजाद नहीं होगा, अमरीकी भारतीय प्रवासियों का सम्मान नहीं करेंगे। उनका कहना था कि अमरीका में उपलब्ध आजादी के माहौल

का इस्तेमाल भारत में एक सशस्त्र विद्रोह संगठित करने में किया जाना चाहिए। उन्होंने लोगों को यह संदेश भारतीय जनता व भारतीय सेना में फैलाने और भारत जाकर उनका समर्थन जुटाने के लिए कहा। एक कार्यकारिणी गठित कर ली गई और गदर अखबार का साप्ताहिक प्रकाशन करने का निर्णय कर लिया गया। निर्णय यह भी था कि अखबार का वितरण निशुल्क किया जाएगा। सैन फ्रांसिस्को के युगान्तर आश्रम से संघ का मुख्यालय कार्य करने लगा। पहली बैठक के बाद अलग-अलग शहरों में बैठकों का सिलसिला शुरू हो गया, जहाँ पोर्टलैन्ड बैठक के निर्णयों को समर्थन मिलता रहा।

प्रवासी मजदूरों के हरेक तबके में क्रान्तिकारियों ने एक सघन अभियान शुरू कर दिया। इन सभी राजनीतिक कार्यकर्ताओं का कार्यालय युगान्तर आश्रम था। **1** नवम्बर **1913** को गदर का पहला अंक प्रकाशित हुआ, और यह उर्दू में निकला था। **9** दिसम्बर को इसके गुरुमुखी और अन्य भारतीय भाषाओं के संस्करण निकाले गए। गदर नाम अपने आप में संगठन के लक्ष्य को स्पष्ट कर देता था। उसके मुख पृष्ठ पर सबसे ऊपर 'अंग्रेजी राज्य का दुश्मन' लिखा रहता था। साप्ताहिक अखबार अपने इरादे की घोषणा करते हुए अंग्रेजी राज के दुष्परिणामों का चिट्ठा जारी किया करता था। इसका हरेक अंक अपने पाठकों के लिए अंग्रेजी राज की अपनी आलोचना का सारांश **14** बिन्दुओं में व्यक्त किया करता था। अन्तिम दो बिन्दु लोगों को इस समस्या का यह समाधान बताया करते थे- भारत में राज करने वाले मुट्ठी भर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करो।

अखबार का संदेश सीधा और सरल था। उसमें सूफी अम्बा प्रसाद से लेकर अनुशीलन समिति के सभी भारतीय राष्ट्रवादियों और उनके योगदान का जिक्र भी रहता था। इसमें धर्मनिरपेक्षता के साथ-साथ चरम क्रान्तिकारी उत्साह व्यक्त करने वाली सशक्त कवितायें छपा करती थीं। उत्तर अमरीका में अखबार का प्रचार-प्रसार काफी व्यापक था। कुछ महीनों में ही फिलीपीन्स, हांगकांग, चीन, मलेशिया, सिंगापुर, ट्रिनिडाड, होन्डुरास में रहने वाले भारतीयों के अलावा इसका वितरण भारत में भी होने लगा था। पंजाबी आप्रवासियों की सभाओं में सुनायी जाने वाली इसकी कवितायें बेहद लोकप्रिय थीं।

गदर अखबार ने बहुत कम समय में आन्दोलन का एक जनाधार तैयार कर दिया था। अगले साल, **1914** में, घटी तीन घटनाओं ने आन्दोलन को आक्रामक कार्यवाहियों की ओर धकेलने में उत्प्रेरक का काम किया। **25** मार्च **1914** को हरदयाल अराजकतावादी गतिविधियां संचालित करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिए गए। हालाँकि बाद में जमानत पर उन्हें रिहा कर दिया गया। इसके बाद उन्होंने अमरीका से बाहर जाने का फैसला कर लिया, और इस तरह एकाएक गदर के साथ उनका जुड़ाव समाप्त हो गया।

मार्च **1914** को कनाडा के समुद्र तट पर घटी कामागाटामारू घटना ने गदर आन्दोलन की आग को चरम पर लहका दिया। जैसा पहले बताया जा चुका गया है, भारतीयों को कनाड़ा में प्रवेश न देने की नीति पर चलते हुए कनाड़ा की सरकार भारतीयों के लिए अप्रवास के कानून सख्त कर चुकी थी। इस कानून के एक अनुच्छेद में लिखा था कि भारत से अनवरत यात्रा के जरिए कनाड़ा पहुंचने वाले भारतीयों को छोड़कर अन्य सभी भारतीयों का वहाँ प्रवेश प्रतिबन्धित रहेगा। उस वक्त भारत से अनवरत यात्रा कराने वाली कोई जहाजी व्यवस्था मौजूद न होने के कारण यह नियम कनाडा में भारतीयों का प्रवेश कारगर ढंग से रोक देता था। लेकिन तभी कनाडा के

सर्वोच्च न्यायालय का एक असाधारण फैसला आया, जिसमें उसने भारत से अनवरत यात्रा न करने वाले **35** भारतीयों के प्रवेश की इजाजत दे दी थी। यह खबर सिंगापुर में रहने वाले एक भारतीय गुरदीत सिंह को भी मिल गई, जो वहाँ ठेकेदारी किया करते थे। वे एक जहाज किराए में लेकर उसमें भारतीय यात्रियों के साथ पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया के कई स्थानों पर गए। जहाज में कुल **376** यात्री थे। जहाज के जापान में याकोहामा शहर पहुँचने पर गदर कार्यकर्ता भी वहां पहुँच गए। उन्होंने वहां भाषण किए और अपने पर्चे वितरित किए। जहाज के वैंकूवर की तरफ बढ़ने और कनाड़ा सरकार द्वारा उसे प्रवेश न दिए जाने की आशंकाओं को लेकर पहले ही सार्वजनिक बहस शुरू हो चुकी थी। पंजाब के अखबारों में चेतावनियां छप रही थीं कि भारतीयों को न घुसने देने के परिणाम बुरे होंगे। उधर कनाडाई प्रेस के कुछ हिस्से तो जहाज के वहाँ आने की घटना को पूरब से किया जाने वाला हमला बताने में लगे थे। दूसरी तरफ कनाडा सरकार भारतीयों के प्रवेश की हरेक कानूनी सम्भावना खत्म करने के बाद, जहाज की प्रतीक्षा से ज्यादा उससे मुकाबला करने के लिए बेकरार दिख रही थी।

जैसा कि आशंका थी जहाज तट पर रोक दिया गया, और उसे बंदरगाह की ओर बढ़ने की इजाजत नहीं दी गई। बलवन्त सिंह, सोहन लाल पाठक और हुसेन रहीम द्वारा यात्रियों के हकों की लड़ाई आगे बढ़ाने के लिए एक तट कमेटी का गठन कर लिया गया। यह कमेटी कोष इकट्ठा करने के अलावा प्रतिवाद सभायें आयोजित करने में लग गई। उधर संयुक्त राज्य अमरीका में गदर नेता भगवान सिंह, बरकतुल्ला, राम चन्द्र और सोहन सिंह भकना एक विशाल सम्पर्क अभियान शुरू करके लोगों से विद्रोह करने की अपील कर रहे थे।

अन्ततः जहाज को कनाडा के जल क्षेत्र से खदेड़ दिया गया। तब तक प्रथम विश्व युद्ध भी शुरू हो चुका था, और ब्रिटेन सरकार का फरमान आ गया कि कलकत्ता के सिवा जहाज को रास्ते में यात्रियों को उतारने की इजाजत नहीं मिलेगी। लौटते हुए जहाज को रास्ते में कई बन्दरगाह मिले लेकिन कहीं भी उसे रुकने नहीं दिया गया। अंग्रेज सरकार के इस दुर्व्यवहार से हरेक बन्दरगाह पर असन्तोष फैल गया और एक अंग्रेज विरोधी लहर पैदा हो गई। अन्ततः कलकत्ता के पास बजबज में जहाज ने अपना लंगर डाला। अधिकारियों के शत्रुतापूर्ण रवैये के कारण यात्रा से थके-मांदे यात्री उत्तेजित हो गए। उन्होंने पुलिस का प्रतिरोध किया। झड़पें शुरू हो गईं। **18** यात्री मारे गए, **202** गिरफ्तार कर लिए गए। बहुत कम यात्री वहाँ से बच निकलने में कामयाब हो सके थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. लार्ड कर्जन-वाइली की हत्या मदन लाल ढींगरा ने की थी ।
2. वी.डी. सावरकर ने **1907** में द्वितीय इन्टरनेशनल की स्टुटगार्ट कांग्रेस में आजाद भारत का झन्डा फहराया था।
3. जी.डी.कुमार ने वैंकूवर में स्वदेश सेवक गृह स्थापित किया, यह लंदन के इन्डिया हाउस जैसा ही था।
4. मार्च **1914** को कामागाटामारू घटना ने गदर आन्दोलन की आग को चरम पर लहका दिया।

5. कामागाटामारू जहाज में कुल **376** यात्री थे।

6.5 प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत को उप महाद्वीप की सम्पूर्ण आजादी का सपना देखने वाले भारतीय क्रान्तिकारियों ने एक अहम मौके के बतौर देखा था। इन नेताओं को लग रहा था कि ब्रिटेन के दुश्मनों के साथ मिलकर भारत से अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने वाली रणनीति बनाने का अवसर आ गया। तुर्की के खिलाफ ब्रिटेन द्वारा छेड़ा गया युद्ध परोक्ष तौर पर लड़ाकू हिन्दू राष्ट्रवादियों और पैन-इस्लामी मुसलमानों के बीच करीबी सहयोग का कारण साबित हो रहा था। यही वह दौर था जब गदर के बरकतुल्ला और देवबंद के मौलवी महमूद हसन और ओबेदुल्ला सिन्धी जैसे नेता राष्ट्रीय परिदृश्य में उभरे थे।

1914 के अगस्त महीने में बंगाल के क्रान्तिकारी कलकत्ता की रोद्दा कम्पनी के जरिए **50** माउजर पिस्तौलें और **46,000** राउन्ड कारतूसों का जखीरा हस्तगत करने में सफल हो गए थे। कोष और राजनीतिक हत्याओं के मकसद से की जाने वाली डकैतियों की घटनायें काफी बढ़ गई थीं- **1914-1915** में क्रमशः **12** और **7** से बढ़कर **1915-1916** में क्रमशः **23** और **9**। जतिन मुखर्जी के नेतृत्व में एक बहु स्तरीय हमले की योजना बनाई गई, जिसके तहत रेल संचार भंग करने, कलकत्ता के फोर्ट विलियम पर कब्जा करने और जर्मनी से हथियारों की खेप बन्दरगाह में मंगाने के लक्ष्य निर्धारित थे। लेकिन एक बार फिर खराब संयोजन के कारण सारी योजना ध्वस्त हो गई। पुलिस ने जतिन मुखर्जी को ढूंढ़ निकाला और उड़ीसा के बालासोर तट पर उन्हें मार दिया गया।

युद्ध शुरू होने के बाद लड़ाई करने के मकसद से गदर क्रान्तिकारी बड़ी संख्या में पंजाब लौटने लगे। **29** सितम्बर **1914** की कामागारू घटना उनकी भावनाओं को और भड़का चुकी थी। इसके अलावा अनेक जगहों पर सैनिकों के विद्रोह हुए थे, जिनमें **15** फरवरी **1915** को सिंगापुर में पंजाबी मुसलमानों की **5**वीं लाइट इन्फैन्ट्री का विद्रोह और जमादार चिश्ती खान, जमादार अब्दुल गनी और सूबेदार दाउद खान के नेतृत्व में **36**वीं सिख बटालियन द्वारा किए गए विद्रोह सबसे महत्वपूर्ण थे। इन विद्रोहों का दमन कर दिया गया, **37** विद्राही फांसी पर चढ़ा दिए गए, और **41** को आजीवन-निर्वासन दे दिया गया।

बाहर से भारत के क्रान्तिकारियों को मदद पहुचाने के साहसिक प्रयास भी इस दौरान हुए थे। युद्ध काल में ये प्रयास मुख्यतया बर्लिन से किये जा रहे थे। **1915** में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन दत्त, हर दयाल और कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में एक भारतीय स्वतन्त्रता समिति का गठन किया गया, यह प्रयास तथाकथित 'जिमरमान योजना' के तहत जर्मनी के विदेश मन्त्रालय के सहयोग से हुआ था। एक भारतीय-जर्मन-तुर्की मिशन के जरिए भारत-ईरान सीमा के पास रहने वाले आदिवासियों में ब्रिटेन-विरोधी भावनायें भड़काने की कोशिशें भी की गईं। दिसम्बर **1915** में महेन्द्र प्रताप, बरकतुल्ला और ओबेदुल्ला सिन्धी द्वारा काबुल में 'आजाद भारत की अस्थायी सरकार' गठित की गई। इस सरकार का अमानुल्ला समर्थन कर रहे थे।

विदेशी धरती पर क्रान्तिकारी गतिविधियों के दूसरे बड़े केन्द्र अमरीका में गदर नेताओं को जर्मनी से काफी धन मिला था। वहां रामचन्द्र और चन्द्र चक्रबर्ती जैसे नेता बर्लिन कमेटी के न्यूयार्क प्रतिनिधि के बतौर काम कर रहे थे। हालाँकि, उनके अन्दरूनी झगड़ों के कारण कोई भी योजना

क्रियान्वित न की जा सकी थी। बाद में, अमरीका के युद्ध में कूद पड़ने के बाद **1918** में 'हिन्दू षडयन्त्र केस' चला, जिसके कारण वहाँ इन गतिविधियों का अन्त हो गया। सुदूर पूर्व में भी जर्मन दूतावास के जरिये धन पहुँचाया गया गया था। जापान में रासबिहारी बोस और अबनी मुकर्जी द्वारा **1915** के बाद भारत में हथियार भेजने की कई कोशिशें की गई थीं। लेकिन ये सारे प्रयास लगातार असफल होते रहे। कुछ ही समय बाद लगने लगा कि भारत में विद्रोह का माकूल अवसर जा चुका है।

इस दौर में अंग्रेजी हुक्मरान क्रान्तिकारी गतिविधियों पर जिस सख्ती से टूट रहे थे, उसकी तुलना केवल **1857** के दमन से ही करना सम्भव है। अंग्रेज सरकार अमरीका में सक्रिय गदर क्रान्तिकारियों की योजनाओं से पूरी तरह वाकिफ थी। **1915** में भारत पर 'डिफेन्स ऑफ इन्डिया ऐक्ट' लाद दिया गया। इसका बुनियादी मकसद गदर आन्दोलन को कुचलना था। **1914** के बाद लौटे अनेक पंजाबियों को अंग्रेज सरकार द्वारा फुर्ती के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। पंजाब और बंगाल में संदिग्ध माने गए अनेक लोग बगैर मुकदमे के अंग्रेजों द्वारा जेलों में ठूँस दिये गए थे। विशेष अदालतें चलाकर लोगों को कठोर सजायें सुनायी जा रही थीं। गदर क्रान्तिकारियों पर चले मुकदमों के एक अध्ययन के मुताबिक तकरीबन **46** लोग फाँसी पर चढ़ाये गए थे, जबकि **64** को आजीवन कारावास की सजा देकर जेल में ठूंस दिया गया था। इसके अलावा सैनिकों के कोर्ट मार्शल की अनेक कार्यवाहियाँ की गई थीं। उग्र पैन-इस्लामवादियों को भी नहीं बक्शा गया था। अली भाइयों, आजाद, हसरत मोहानी और दूसरे अनेक लोगों को युद्ध के दौरान, और यहां तक कि बाद में भी, सालों जेल में बन्द रखा गया। **1916** तक गिरफ्तार होने वाले **8,000** लोगों में **2,500** को नजरबन्द किए गए थे, जबकि **400** जेल में ठूंसे गए थे। फिरोजपुर, लाहौर और रावलपिन्डी की सैनिक इकाइयों में **21** फरवरी **1915** के दिन एक साथ विद्रोह करने की योजना बनी थी, जिसे अंग्रेज सरकार अन्तिम क्षण में विफल करने में कामयाब हो गई। रासबिहारी बोस को भाग कर जापान जाना पड़ा। सचिन सान्याल को बनारस और दानापुर सैन्य इकाइयों में विद्रोह संगठित करने की कोशिश के आरोप में आजीवन निर्वासन मिल गया। गदर आन्दोलन मिटा दिया गया। इस तरह राष्ट्रवादियों की एक समूची पीढ़ी अंग्रेज सरकार के दमन के जरिए मिटा दी गई थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. उत्तरी अमरीका के पहले भारतीय नेता ..... ने फ्री हिन्दुस्तान का प्रकाशन शुरू किया था।
2. ..... को गदर का पहला अंक प्रकाशित हुआ।
3. **15** फरवरी **1915** को सिंगापुर में पंजाबी मुसलमानों की ..... का विद्रोह हुआ था।
4. **1915** में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन दत्त, हर दयाल और कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में'जिमरमान योजना' के तहत एक भारतीय स्वतन्त्रता समिति का गठन किया गया, यह प्रयास .... के विदेश मन्त्रालय के सहयोग से हुआ था।
5. फिरोजपुर, लाहौर और रावलपिन्डी की सैनिक इकाइयों में ..... के दिन एक साथ विद्रोह करने की योजना बनी थी

6.6 सारांश

यह तो स्पष्ट है कि विदेशी धरती से चलाई गयी क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ अपने घोषित मकसद में असफल रही थीं। लेकिन विचारधारा का मसला अलग है, जहाँ गदर और अन्य क्रान्तिकारियों के बलिदानों की वजह से भारी प्रगति दर्ज हुई थी। नरमपंथी राष्ट्रवादियों द्वारा की जाने वाली उपनिवेशवाद की आलोचना शुरुआती दौर के इन अखबारों, खासकर गदर के जरिये बेहद सशक्त और सरल रूप में देश और विदेश की भारतीय जनता तक पहुँचाई गई थी। विदेश में सक्रिय भारतीय क्रान्तिकारियों को जिस कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ता था, उसने उनके विचारों में गहरी जड़ जमाए संकीर्ण धार्मिक तत्व भी खत्म कर दिए थे। अब वह सीमित, संकीणी दृष्टिकोण बदल चुका था, जिससे भारत के शुरुआती दौर की उग्र राष्ट्रवादी पीढ़ी ग्रस्त रहती थी। धार्मिक पहचान के तंग दायरे से निकलकर लेखन और संगठन में व्यापक गठबन्धन बनने लगे थे। इस सन्दर्भ में लंदन के क्रांन्तिकारियों द्वारा**(1907)** प्रकाशित पुस्तिका 'ओ शहीदों' में **1857** जैसे संयुक्त हिन्दू-मुसलमान विद्रोह का आह्वान गौरतलब है। **(1909)** बन्दे मातरम में भी साम्राज्यवाद विरोधी एक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का नजरिया उभरता देखा जा सकता है।

राष्ट्रवादी आन्दोलन का धर्मनिरपेक्ष चेहरा गदर और गदर दी गूंज में सर्वाधिक प्रखरता के साथ दिखायी दे रहा था। हालांकि गदर के अधिकांश क्रान्तिकारी सिख थे, लेकिन उनकी अपील कहीं व्यापक थी। वे दूसरे धर्मों के लोगों का नेतृत्व स्वीकार करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। इसके अलावा गदर आन्दोलन कतिपय धारणाओं में बदलाव और धर्मनिरपेक्ष माहौल सुदृढ करने का सचेत प्रयास अपने लेखन में करता दिख रहा था। मसलन, तुर्काशाही शब्दावली, और उसमें निहित मुसलमान या तुर्क-मुसलमान प्रभुत्व की धारणा को उसने छोड़ने का प्रयास किया था, हालांकि पंजाब और सिख समुदाय के भीतर उस वक्त इस शब्दावली की व्यापक मान्यता थी। गदर के नेता मुसलमानों को अपने भाई की तरह देखने की अपील लोगों से किया करते थे। इस आन्दोलन ने एक दूसरा बदलाव भी किया था। अब, अंग्रेज साम्राज्य के वफादार छवि वाले पंजाबी की जगह एक ऐसे विद्रोही पंजाबी की छवि सामने आ चुकी थी जो अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए समर्पित था। इस समुदाय में यह तब्दीली सचेत प्रयासों का नतीजा थी। उन्हें मातृभूमि की सेवा को ही अपने साम्राज्यवाद परस्त अतीत का प्रायश्चित बताया गया था। धार्मिक चर्चाओं में भी बदलाव आया था, और अब वहां कर्मकान्ड की जगह स्वानुशासन के माडल व भले व्यवहार को तरजीह दी जाती थी।

बन्दे मातरम का राष्ट्रवादी सलाम सहजता के साथ सभी क्रान्तिकारियों की दैनिक सलामी बन चुका था। इन क्रान्तिकारियों की देशभक्ति सर्वभारतीयता की परिकल्पना में पकी थी। सभी इलाकों के शहीद व क्रान्तिकारी इनके नायक थे। विदेशी धरती में हरदयाल जैसे क्रान्तिकारी जिन समाजवादी व अराजकतावादी विचारों से परिचित हुए थे, अब वे भारतीय भूमि में प्रचारित होकर पनप रहे थे। इसका नतीजा नेताओं की एक ऐसी नई पीढ़ी के विकास में देखा गया, जो किसानों के बीच सक्रिय रहते हुए भावी दशकों में कम्युनिस्ट बने थे।

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

प्रवासी – दूसरे देश में निवास करने वाला

ग़दर - विद्रोह

कोर्ट मार्शल- सैनिकों के खिलाफ की जाने वाली न्यायिक कार्यवाही

उत्प्रेरक – क्रिया को तेज करने वाला

6.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 6**.4 के उत्तर**

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

इकाई 6**.5 के उत्तर**

1. तारक नाथ दास
2. **1** नवम्बर **1913**
3. **5**वीं लाइट इन्फैन्ट्री
4. तथाकथित जर्मनी
5. **21** फरवरी **1915**

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Randhir Singh, *The Ghadar Heroes,* Bombay 1945

Indulal Yagnik, *Shyamji Krishnavarama-Life and Times of an Indian Revolutionary,* Bombay, 1950

Sohan Singh Josh, *Baba Sohan Singh Bhakna: Life of the Founder of the Ghadar Party*, New Delhi, 1970

A.C. Bose, *Indian Revolutionaries Abroad, 1905-22 in the background of international developments,* Patna, 1971

Emily C Brown, *Har Dayal: Hindu Revolutionary and Rationalist,* Tuscon, 1975

Sohan Singh Josh, *Hindustan Ghadar Party: A Short History*, New Delhi 1977

Harish K Puri, *Ghadar Movement,* Amritsar, 1983

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ और क्रान्तिकारी कार्यवाहियों पर चर्चा कीजिए।

2.प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ पर प्रकाश डालिए।

इकाई सात

साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 साम्प्रदायिकता: अवधारणा व विविध आयाम

7.4 साम्प्रदायिकता का भारतीय सन्दर्भ

7.4.1 भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता

7.5 भारत का सम्प्रदायीकरण: पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों और साहित्य की भूमिका

7.6 सारांश

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

7.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच घृणा और फसाद की घटनायें हमारे उप महाद्वीप और दुनिया के व्यापक इतिहास में भरी पड़ी हैं। फिर भी, साम्प्रदायिकता एक आधुनिक परिघटना है। अकसर साम्प्रदायिक विचारक अतीत की चन्द मनमाफिक घटनाओं को उछालकर अपना पक्षपोषण करने वाला ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत करते हैं, और उसे एक ऐतिहासिक परिघटना साबित करने की कसरत करते हैं। इतिहास की बेहतर समझ न रखने वालों को उनका यह मनगढन्त वृत्तान्त भावनात्मक तौर पर काफी प्रभावित करता है। लेकिन ऐतिहासिक तथ्यों के ऐसे पिटारे से निकले निष्कर्ष मूलतः घातक होते हैं।

साम्प्रदायिकता उस आधुनिक राजनीति का नतीजा है जो प्राचीन व मध्य काल की राजनीति से पूरी तरह हटकर एकदम नया आकार ले चुकी है। सरकार के निर्णयों में और सरकार चलाने वालों के चयन में आधुनिक राजनीति आम आदमी को शामिल करने की औपचारिक कसरत करती है। भारत की साम्प्रदायिकता को उपमहाद्वीप का अनोखापन या विशिष्टता नहीं माना जाना चाहिए। उपमहाद्वीप में आधुनिक व सांविधानिक राजनीति के आगमन के साथ साम्प्रदायिकता की राजनीति वैसे ही चली आई जैसे राष्ट्रवाद और समाजवाद उदित हुए थे। दरअसल, यह इटली के फासीवाद, मध्य पूर्व के यहूदीद्रोह, यूरोप व अमरीका के नस्लवाद, उत्तरी आयरलैन्ड की कैथोलिक-प्रोटेस्टेन्ट लड़ाइयों और लेबनान के इसाई-मुसलमान फसादों का भारतीय प्रतिरूप है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रारम्भिक दौर में साम्प्रदायिकता के उद्भव और विकास से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से भी परिचित हो सकेंगे :

1. साम्प्रदायिकता की अवधारणा और उसके विविध आयाम
2. भारतीय सन्दर्भ में साम्प्रदायिकता
3. भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता
4. भारत के सम्प्रदायीकरण में पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों और साहित्य की भूमिका

7.3 साम्प्रदायिकता: अवधारणा व विविध आयाम

साम्प्रदायिकता की हरेक सीढ़ी उसके अनुयायी को इस विचारधारा की अगली सीढ़ी की ओर धकेलती जाती है। जब अलग-अगल समुदाय धीरे-धीरे आस्था की इस दिशा में अग्रसर होते हैं, उनके दोषपूर्ण चिन्तन पर उनकी ऐसी तीव्र भावान्धता छा जाती है, जो भय और घृणा की भाषा के अलावा कुछ नहीं समझती। अपनी चरम अवस्था में पहुंचने पर साम्प्रदायिकता बुनियादी तौर पर हिंसक हो जाती है, और वह उन सबका सफाया करने की फिराक में रहती है जिनकी पहचान वह परस्पर दुश्मन के बतौर कर चुकी होती है।

साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास एक आधुनिक परिघटना है। इस चिन्तन की तीन उल्लेखनीय अवस्थायें हैं, जो आनुक्रमिक भी हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा का पहला तत्व यह आस्था है कि लोगों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक हित एक समान तभी होंगे जब वे सभी एक समुदाय के हों। यह समुदाय कोई पंथ या धर्म हो या फिर किसी अन्य संकीर्ण आधार पर परिभाषित कोई अन्य पहचान। इस विश्वास-प्रणाली के आधार पर लोगों को संगठित करने वाले नेता इसी पहचान पर सर्वाधिक बल देते हैं।

इसका दूसरा तत्व इस साम्प्रदायिक विचारधारा की अगली अवस्था है, और यह दावा करता है कि अपनेपन के अलग-अलग भावबोध वाले समुदायों को लेकर बनने वाले किसी समाज के हित अनिवार्यतया अलग-अलग होते हैं।

इसका तीसरा तत्व यानी कि इस विचारधारा की चरम अवस्था वह है जब लोगों की रूढिबद्ध आस्था अलग-अलग धर्मों या समुदायों के हितों को अनिवार्यतया प्रतिद्वन्द्वी मानने लगती है।

इस तरह, एक हिन्दू साम्प्रदायिक विचारक दावा करने लगता है कि वर्ग, सामाजिक हैसियत या पद चाहे जो हों, सभी हिन्दुओं का हित एक है, और वह मुसलमान समुदायों से असंगत है। इसी चरम अवस्था में सामाजिक समाधान के लिए भौगोलिक क्षेत्र के विभाजन की वकालत की जाती रही है। यह हकीकत वाकई त्रासद है कि बीसवीं सदी में अनेक राष्ट्र इसी विचार-आस्था के तन्त्र की पैदाइश हैं, और हिंसा के जरिए ही ये राष्ट्र अस्तित्व में आए हैं।

7.4 साम्प्रदायिकता का भारतीय सन्दर्भ

भारत के सन्दर्भ में कहा जाता है कि यहां उपनिवेशवाद द्वारा लाए बदलावों के प्रभाव के तहत साम्प्रदायिकता पनपी और विकसित हुई। उपनिवेश में बदल दिए गए भारत में साम्प्रदायिकता मूलतः अविकास करने वाले औपनिवेशिक आर्थिक रूपान्तरण का ही एक उप-उत्पाद थी। अर्थव्यवस्था में ठहराव और जनता के दरिद्रीकरण ने ऐसी परिस्थितियाँ बना दीं जो धार्मिक-तबकाई विभाजन व वैमनस्य के फलने-फूलने के लिए मुफीद थीं। अपने शासन के विरोध में पनपी प्रतिक्रया को दबाने के लिए औपनिवेशिक शासन तरह-तरह के सामाजिक व तबकाई विभाजनों को हवा देता रहता था, और इस हथकन्डे का प्रत्यक्ष इस्तेमाल करने में भी उसे कोई गुरेज नहीं होता था। हालांकि, अन्य साम्प्रदायिक संघर्षो की भाँति हिन्दू-मुसलमानों के बीच टकराहटों के उदाहरण ढूंढ़ने पर मध्य काल में भी मिल सकते हैं, लेकिन **1880** के दशक के पहले साम्प्रदायिक चरित्र वाले दंगों के उदाहरण न के बराबर मिलते हैं। दूसरी ओर आधुनिक युगीन औपनिवेशिक भारत में साम्प्रदायिक चेतना अभिजनों व मध्य वर्गों में जड़ जमाने के अलावा आम जनता में भी काफी व्यापक पैठ बना चुकी थी।

उपनिवेशवाद के प्रभाव में साम्प्रदायिकता का हुआ उभार उस वक्त की एक राजनीतिक प्रवृत्ति के विश्लेषण से भी उजागर होता है। उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी की शुरुआत में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था गतिरुद्धता की शिकार थी, और जिसके कारण सरकार व अन्य व्यवसायों में नौकरियों के सीमित अवसरों के लिए तीखी होड़ पैदा हो रही थी। इसलिए सरकार के साथ रब्त-जब्त बनाए रखने वाले व पदवीधारी मध्यमवर्गीय व्यक्ति इन आर्थिक अवसरों को हड़पने की फिराक में एड़ी चोटी एक किये रहते थे। सरकारी रवैये ने भी इस होड़ को एक अतिरिक्त आयाम दे दिया था, क्योंकि वह रोजगार के अवसरों के बंटवारे में जाति, समुदाय और इलाके के हितों की संकीर्ण गणित का दांव भी खेला करती थी। आखिर, उसे अपने लिए एक राजनीतिक आधार जुटाने और उसे पुष्ट करने की गरज जो थी। अंग्रेज सरकार की सरपरस्ती में इन संकीर्ण प्रक्रियाओं को अपने विकास के लिए हासिल माकूल माहौल में साम्प्रदायिकता कुछ व्यक्तियों और उनके हितों को फायदा पहुंचाती ही थी। लेकिन खास बात यह है कि वह साम्प्रदायिक तन्त्र को एक घरेलू उद्योग बना देती थी, जो बदले में फिर इन्ही आधारों पर लोगों को संगठित किए जाने वाली कार्यवाहियों के लिए प्रेरणा देने का काम करता था। इस राजनीतिक प्रक्रिया की सबसे खास बात यह थी कि वह साम्प्रदायिक राजनीति को पुनर्स्थापित और जायज बनाती थी।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ने के साथ उपरोक्त प्रवृत्ति और भी बढ़ती गई। अब ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले ऐसे साक्षर लोगों की संख्या बढ़ने लगी जो स्कूल और कॉलेज से पढ़ाई करने के बाद पेशेवर नौकरियों के लिये लालायित रहते थे और खेती से विमुख हो रहे थे। कृषि पर ठहराव

की मार तो पहले ही थी, अब एक नया ग्रहण इसके माथे पर लग चुका था। यह पेशा सामाजिक सम्मान के ओहदे से नीचे लुढ़क चुका था।

7.4.1 भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता

एक कम विदित तथ्य यह है कि भारत की आम जनता में साम्प्रदायिकता का प्रसार काफी पहले शुरू हो चुका था। इसका बढ़ना और व्यापक होते जाना प्रान्तों की अभिजात राजनीति से भी अपरोक्ष तौर पर जुड़ा था। **1880** के दशक से साम्प्रदायिक दंगों की घटनायें संयुक्त प्रान्त और पंजाब में बढ रही थीं। दोनो ही प्रान्तों की राजनीति में हिन्दू और मुसलमानों के अभिजात वर्ग का एक समान दबदबा था। इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी है कि साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में वहां के सामाजिक आर्थिक कारक भी भूमिका निभा रहे थे, वजह यह थी कि इन प्रान्तों में वर्ग और पेशे भी धार्मिक आधार पर ध्रुवीकृत थे। अवध और अलीगढ़ क्षेत्र में एक बड़े इलाके के किसान हिन्दू थे जबकि तालुकदार मुसलमान। शहरों में अधिकांश कारीगर, दुकानदार और छोटे व्यापारी मुसलमान थे जबकि बड़े व्यापारी और बैंक मालिक हिन्दू। दूसरी ओर पंजाब में अधिकांश व्यापारी और सूदखोर हिन्दू थे, जबकि उनका लेनदेन जिन किसानों के साथ था वे अधिकांशतया मुसलमान थे।

दंगों की आग में घी का काम करने वाले तात्कालिक मुद्दे, हालांकि, बिलकुल अलग थे। इतिहासकार गेराल्ड बैरियर **1883** और **1891** के बीच हुए पंजाब के ऐसे **15** बड़े दंगे गिनाते हैं जिनकी शुरुआत गोहत्या के मुद्दे से हुई थी। इसी मुद्दे पर **1888** और **1893** के बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश ओर बिहार के इलाकों में दंगे भड़के थे, और बलिया, बनारस, आजमगढ़, गोरखपुर, आरा, सारन, गया और पटना जिले दंगों से झुलस गए थे। **1893** और **1895** के बीच बम्बई शहर और महाराष्ट्र के दूसरे कई शहर भी दंगों की चपेट में आए थे। यहाँ एक बार फिर गोकशी और गोरक्षा के मुद्दों ने आग भड़काने का काम किया था, हालाँकि यहां सामुदायिक आधार पर गणपति उत्सव आयोजित किए जाने से भी तल्खी पैदा हो रही थी। मामला तब विस्फोटक हो गया जब गणपति उत्सव के लिए लिखे गीतों में मुसलमानों और उनके मुहर्रम जैसे त्योहार पर पर भड़काऊ टिप्पणियां की गईं। कुछेक गीतों में तो मुहर्रम के बहिष्कार की अपील भी हिन्दुओं से की गई थी। हद तो यह थी कि सुधारक जैसी सुधारवादी पत्रिका सार्वजनिक जीवन के साम्प्रदायीकरण को बढ़ावा देने वाली टिप्पणियां छाप रही थीं।

कलकत्ता के औद्योगिक इलाके में भी साम्प्रदायिक दंगे की पहली घटना काफी पहले, मई **1891** में, दर्ज की गई थी। इसके बाद **1896** में भी टीटागढ़ और गार्डेन रीच मोहल्लों में बकरीद के अवसर पर भी फसाद हुए थे। इसके अलावा **1897** में उत्तरी कलकत्ता के तल्ला में व्यापक पैमाने पर दंगे देखे गए थे।

जैसा हम पहले बता चुके हैं, एक प्रवृत्ति के बतौर साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद का करीबी हमसफर रही है। **1905** में बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान साम्प्रदायिक सौहार्द की अनेक मिसालें कायम हुई , आन्दोलनकारियों में मुसलमानों की भारी भागीदारी देखी गई, लेकिन फिर भी भांति-भांति के मुद्दों पर साम्प्रदायिक दंगों की घटनायें भी काफी ज्यादा हुईं। कांग्रेस के राजनीतिक विकास को थामने के लिए अंग्रेज सरकार बंगाल विभाजन की चाल चल चुकी थी, और यह प्रचार भी कर रही थी कि नया प्रान्त बनने से मुसलमानों को अधिक रोजगार की

सौगात मिलेगी। अंग्रेजों के इस प्रचार को ढाका के नवाब की नई राजनीति से और बल मिल रहा था, क्योंकि वे लार्ड कर्जन की सरपरस्ती में **1906** में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना के जरिए साम्प्रदायिकता को हवा दे रहे थे।

इस दौर में सबसे भयानक दंगों का सिलसिला पूर्वी बंगाल में देखा गया, जब मई **1906** में मैमनसिंह जिले के ईश्वरगंज, **1907** में कोमिला, अपैल से मई **1907** के बीच मैमनसिंह जिले के जमालपुर, दीवानगंज और बक्शीगंज के इलाके दंगों की आग में जल उठे थे। मैमनसिंह जिले के साम्प्रदायिक दंगों में ग्रामीण इलाके का विशिष्ट सामाजिक अन्तरविरोध सतह पर आ गया था। यहाँ दंगाइयों द्वारा मुख्यतया हिन्दू जमींदार व महाजन निशाना बनाए जा रहे थे। कुछ हिन्दू जमींदारों ने हाल में हिन्दू मूर्तियों के रखरखाव के लिए ईश्वर बृत्ति नाम से एक नया कर अधिकांशतया मुसलमान किसानों पर थोप दिया था, जो जाहिरा तौर पर इससे काफी क्षुब्ध थे। दंगों के दौरान महाजनों के बहीखाते जलाए जाने की कई घटनायें हुई थीं, और इस लूटपाट में अधिसंख्य मुसलमानों के अलावा कहीं-कहीं हिन्दू किसानों ने भी भागीदारी की थी।

जब किसान दंगे कर रहे थे, उस वक्त मौलवी गण यह अफवाह फैलाने में लगे थे कि अंग्रेज यह इलाका ढाका के नवाब को सिपुर्द करने वाले हैं, जिनको वे मसीहा बनाकर पेश कर रहे थे। इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ये नेता उभरते धनी मुसलमान किसानों के साथ संश्रय कायम करना चाहते थे, ताकि वे मुख्यतया हिन्दू जमींदार-महाजनों के समूह को परास्त कर सकें। आने वाले दशकों में साम्प्रदायिकता और फैलती गई, खासकर अलगाववाद की लहरों पर सवार होकर, जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के गठन के साथ न सिर्फ अभिजनों में फैल रही थी बल्कि जनता में भी उसका तेजी के साथ विस्तार हो रहा था। कारण यह था कि अब विभिन्न मुद्दों पर जनगोलबन्दी की सारी कोशिशें अन्त में साम्प्रदायिक रंग ले लेती थीं और पूरे इलाके का साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण तेज हो जाता था। इस प्रवृत्ति को एक ऐतिहासिक घटना से भी समझा जा सकता है। **1904** में, बंगाल में मैमनसिंह जिला के जमालपुर ब्लाक स्थित कमरिया चर में एक प्रजा सम्मेलन आयोजित किया गया था, यहां लगान घटाने, अतिरिक्त कर खत्म करने, कर्ज में राहत देने, पेड़ लगाने व जमींदारों को नजर (कर) दिए बगैर तालाब खोदने का हक देने और हिंदू जमींदारों की कचहरी में मुसलमान किसानों से सम्मानजनक बर्ताव किये जाने की मांगे उठाई गई थीं। सम्मेलन के आयोजन में एक धनी मुसलमान रैयत चौधरी खोस माहम्मद सरकार की अग्रणी भूमिका थी। सम्मेलन के मांग पत्र को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि वहां मुसलमान बटाईदारों के सवालों को नहीं उठाया गया था। बंगाल के अनेक नेताओं की इस सम्मेलन में भागीदारी भी हुई थी। बहरहाल, गौरतलब है कि खुले तौर पर केवल मालिक (मुसलमान) किसानों के सवाल उठाने वाले इस सम्मेलन से बाद के दौर में खालिस मुसलमानों का एक मोर्चा विकसित हो गया, और वह बीसवें व तीसवें दशक में बंगाल की राजनीति में प्रभावी भूमिका निभाता रहा।

इन्हीं दशकों में साम्प्रदायिक दंगों के लिये की गई जनगोलबन्दी के स्तर में बेतरह इजाफा हुआ था। अक्टूबर **1917** में, बिहार के शाहाबाद में मुसलमानों के **124** गांव, गया के **28** गांव और पटना के **2** गांव जिन साम्प्रदायिक हमलों के शिकार हुए थे, उनमें तकरीबन **50,000** हिन्दू शामिल हुये थे। हालांकि यह भी सच है कि उस समय ऐसी अफवाहें फैली थीं कि अंग्रेजी शासन

खत्म होने जा रहा है। कहा तो यह भी जाता है कि खतरे में पड़े अपने नेतृत्व को बचाने के लिए ऊंची जाति के जमींदार ये दंगे करवा रहे थे।

गोरक्षा के लिए सनातन धर्म सभा और आर्य समाजियों द्वारा चलाये गये अभियान भी इन दंगों में खतरनाक भूमिका निभा रहे थे। इन संगठनों का प्रचार के व्यापक स्वीकृति हासिल करने की वजह यह थी कि वे धार्मिक भाषणों, हिंदी भाषा के प्रसार जैस मुद्दों की होम रूल राजनीति और **1917** के बाद किसान सभायें बनाने जैसे सवालों की खिचड़ी बनाकर परोसे जा रहे थे।

सितम्बर में हुए कलकत्ता दंगों के दौरान बड़ाबजार के मारवाड़ी व्यवसायियों पर उनके गरीब मुसलमान पड़ोसियों द्वारा हमले हुए थे। कहा जाता है कि पैन-इस्लाम के प्रचारक कुछ गैर बंगाली मुसलमान आन्दोलनकारी व ग्रामीण उलेमाओं ने इन दंगों में उकसावेबाजी का काम किया था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट -**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।**

1. इतिहासकार गेराल्ड बैरियर के अनुसार **1883** और **1891** के बीच पंजाब में **15**0 बड़े दंगे हुए थे
2. **1896** में टीटागढ़ और गार्डेन रीच मोहल्लों में बकरीद के अवसर पर फसाद हुए थे।
3. **19**16 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई थी ।

7.5 भारत का सम्प्रदायीकरण: पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों और साहित्य की भूमिका

परवर्ती उन्नीसवीं सदी में और उसके बाद साम्प्रदायिक घटनाओं का विस्तार कोई अकस्मात की आसमानी बारिश न थी। हिन्दू व मुसलमान समाजों के अन्दर सामाजिक आन्दोलनों की शक्ल में चलने वाली कुछ प्रक्रियाओं ने ही इस बदलाव को आधार मुहैया कराया था। समाज सुधार के विभिन्न संगठनों के कतिपय विमर्श, उनकी शिक्षायें, भाषायी-लिपि की बहसें, देशी भाषाओं के साहित्य के इतिहास सम्बन्धी तत्व और उनकी ऐतिहासिक परिकल्पना जैसी बातों ने मिलकर, और अपने स्तर पर, दोनों धार्मिक समुदायों में साम्प्रदायिक चेतना के विस्तार को आगे बढ़ाया था।

बंगाल में 'वेदों की ओर चलो' के नारे के साथ हिन्दू समाज को व उसकी परम्पराओं को सुधारने का सबसे पहला आह्वान ब्रह्म समाज ने किया था। परम्परा की पुनर्खोज और पुनरुत्थान जैसे विचारों के बल पर ब्रह्म समाज की सक्रियता बढ़ती गई लेकिन इसी कोटि के अन्य संगठन व ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे महत्वपूर्ण सुधारक पृष्ठभूमि में चले गए। आन्तरिक कलह भी इस तरह के संगठनों को मथ रही थी, और जब ऐसी निर्णायक घड़ियां आईं, अधिकांश सुधारक संगठन का नेतृत्व करने के लिए उपस्थित नहीं रह गए थे। **1870** के आसपास समाज सुधार का मुद्दा धीरे-धीरे पृष्ठभूमि में खोता जा रहा था, और हिन्दू परम्पराओं के पुनरुत्थान का मुद्दा लोगों में लोकप्रिय हो रहा था। यह बदलाव मैक्स मुलर द्वारा भारत के प्राचीन गौरव की खोज के बाद शुरू हुआ था। खुद मैक्स मुलर 'अनोखे पूरब' के एक रोमानी पंथ के वैचारिक प्रभाव में थे, जिसका उस वक्त की पश्चिमी बौद्धिक परम्परा में खासा असर था। भारत में यह बदलाव बंगाल में बंकिम चन्द्र की **1880** दशक की रचनाओं में सबसे ज्यादा दिखता है। बंकिम ने कृष्ण की पुनर्व्याख्या करते हुए उन्हें एक आदर्श पुरुष, सांस्कृतिक नायक और राष्ट्र निर्माता के बतौर

प्रस्तुत किया था। कृष्ण प्रसन्न सेन की छलांग तो और भी लम्बी थी। उनका दावा था कि पश्चिम के आधुनिक विज्ञान की सभी खोजों के दृष्टान्त हमारे शास्त्रों में उपलब्ध हैं। बंगाल में चैतन्य से अभिभूत एक नव वैष्णववादी प्रवृत्ति उभर रही थी, जिसके प्रचार में वहां का एक अखबार, अमृत बाजार पत्रिका सक्रिय था। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द एक और प्रवृत्ति का नेतृत्व करते थे, जो सारतः सरलीकृत और सारसंग्रहवादी थी। अपने स्वरूप और कथ्य में उनकी शिक्षायें भावनात्मक थीं और उन्होंने जीवन के हरेक क्षेत्र के लोगों को अपनी तरफ आकर्षित किया था। उनकी शिक्षाओं में प्रगतिशील तत्वों की मौजूदगी के बावजूद लोगों में उनकी अपील सीमित रही, क्योंकि बदलाव का कोई ठोस कार्यक्रम वहां मौजूद न था। इस कमजोरी की वजह से सामाजिक सुधार का एजेन्डा पुनरुत्थानवादी अभियान के आगे और कमजोर पड़ गया।

महाराष्ट्र में विष्णु कृष्ण चिपलुन्कर की निबन्धमाला 'खो चुके हिन्दू' का जो भावुक चित्र खींचती थी, उससे अंग्रेजी शिक्षा पाए युवा बेहद प्रभावित हो रहे थे। अपनी खोयी परम्परा का विलाप करते हुए उसे पुनर्स्थापित करने का आह्वान वे परम्परावादी शास्त्री भी कर रहे थे, अंग्रेजी राज ने जिनकी आर्थिक दशा खस्ता कर दी थी। दूसरी ओर पूना के पुनरुत्थानवादियों ने **1990** के दशक में एज ऑफ कन्सेन्ट विधेयक के विरोध के माहौल में बाल गंगाधर तिलक के साथ मोर्चा बना लिया था। महाराष्ट्र में इसी समय गणपति उत्सव भी आयोजित किये जा रहे थे। यहां तक कि एन्नी बेसेन्ट भी अपनी थिओसॉफिकल सोसाइटी के जरिये सामाजिक सुधार की धारा पर हमला बोल रही थीं और पारम्परिक हिन्दुत्व का गुणगान कर रही थीं।

बहरहाल, अपनी तीव्रता और विस्तार में जनगोलबन्दी के ये सभी प्रयास आर्य समाज की सफलता के आगे फीके थे। काठियावाड़ के दयानन्द सरस्वती इस संगठन के संस्थापक थे और इसका मुख्य सामाजिक आधार उत्तर भारत था। आर्य समाज की शिक्षा के दो मुख्य सन्देश थे। एक तरफ यह हिन्दुओं के वर्तमान आचार-विचार की तीखी आलोचना करते हुये वेदों की ओर लौटने को अचूक निदान के बतौर प्रस्तुत करता था। दूसरी ओर वह अन्य धर्मों की तुलना में बेहद आक्रामक लहजे में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करता था। उसके इस सैद्धान्तिक दोहरेपन की अस्पष्टता के कारण समाज सुधार के इच्छुक लोगों को आकर्षित करने के साथ-साथ हिन्दू पुनरुत्थान के पुजारियों को भी अपने संगठन में खींच लेता था। वैचारिक दोहरेपन के इसी अस्त्र के जरिए वह ब्रह्म समाज को पीछे धकेलने में सफल हो गया था। समाज सुधार की राह से आकर्षित शिक्षित भारतीय युवा इसकी तरफ आए क्योंकि वह उन्हें सुरक्षित माहौल मुहैया करता था। इसके विस्तार के पीछे इसके प्रतिद्वन्द्वी ब्रह्म समाज की एक कमजोरी का भी योगदान था, उसे बंगाली समाज से जोड़कर देखा जाता था, जबकि नौकरियों में बंगालियों का भारी बाहुल्य होने के कारण उत्तर भारत में प्रवासियों का यह समुदाय खासा अलोकप्रिय हो चुका था।

आर्य समाज ने अपने कार्य क्षेत्र के व्यापारी समुदायों में काफी पैठ बनाई थी। इतिहासकार केनेथ जोन्स के अनुसार आर्य समाज के चार केन्द्र थे- पंजाब-पेशावर-रावलपिंडी, मुलतान, रोहतक-हिसार और जालन्धर का दोआब क्षेत्र। ये सारे आर्य समाजी केन्द्र स्थानीय व्यवसायियों के सहयोग के बलबूते चलते थे। आर्य समाज ने **1900** के बाद अपने आधार क्षेत्र का गुणात्मक विस्तार किया, और यह कारनामा उसने अपने विशाल शुद्धि कार्यक्रम के जरिए हासिल किया था, जो राधिया, जाट, मेघ और ओध जैसी दलित जातियों का धर्मान्तरण कराने वाला एक

अभियान था। उसकी सदस्यता भी काफी बढ़ गई थी, और **1901** में **92,000** की संख्या तक पहुंच गई थी। हालांकि, इसी दौरान अन्दरूनी सांगठनिक विवाद भी जोर मारने लगे थे। **1893** में खानपान (मांसाहार बनाम शाकाहार) और शिक्षा (अंग्रेजीनिष्ठ बनाम संस्कृतनिष्ठ) के मसले पर आर्यसमाजी संगठन टूट गया। नरमपंथी धड़ा दयानन्द एंग्लो वेदिक कालेज खोलने, कांग्रेस से तालमेल करने और स्वदेशी उद्यम लगाने की राह पर चलने लगा। कट्टर व पुनरुत्थानवादी धड़ा **1902** गुरुकुलों की स्थापना के अपने एजेन्डे में जुट गया। यह धड़ा वेतनभोगी प्रचारकों के जरिये शुद्धीकरण और धर्मान्तरण के कार्यक्रमों पर बल देता था। इतिहासकार केनेथ जोन्स का मानना है कि मतभेदों के बावजूद दोनों धड़े वैचारिक तौर पर हिन्दू चेतना की ओर और झुकते गए, और उनकी वैचारिक स्थिति मुसलमानों के खुले विरोध की हो गई।

आर्यसमाज विचार और क्षेत्र के सम्प्रदायीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के मामले में बेशक सबसे आगे था, लेकिन इस मामले में वह अकेला न था। यह नहीं भूलना चाहिए कि समाज सुधार के प्रगतिशील आदर्शों का झन्डा लेकर चलने वाले प्रार्थना समाज, डेरोज़िओ का यंग बेंगाल मूवमेन्ट, विद्यासागर का ब्रह्म समाज जैसे अन्य संगठन भी अपनी बनावट में मूलतः हिन्दू थे। उनका प्रभाव भी हिन्दुओं तक सीमित था। इसके अलावा उनके विचार और कर्म की बुनियाद ही इस परिकल्पना पर खड़ी थी कि भारतीय मध्ययुग मुसलमान-तानाशाही से बेजार एक अन्धकार युग था, जिससे उपमहाद्वीप की मुक्ति पुनर्जागरण के अनुभव से समृद्ध प्रबुद्ध अंग्रेजों के हाथों हुई है। ऐसे बौद्धिक आधार वाले अभियान के इर्दगिर्द मुसलमान बुद्धिजीवी या आम मुसलमान आश्वस्त नहीं रह सकते थे।

मुसलमान समुदाय खुद भी इसी रास्ते का राही हो गया था। मुसलमानों में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में दो विरोधी राजनीतिक प्रवृत्तियां आपस में होड़ करती दिखती हैं। पहली प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व समाज सुधार को लक्ष्य करके चलने वाला सर सैयद अहमद खान का अलीगढ़ आन्दोलन करता है, जो अंग्रेज सरकार से घनिष्ठता बनाकर अपना रास्ता बना रहा था। उनके द्वारा विज्ञान को बढ़ावा देने वाली एक वैज्ञानिक समिति और उर्दू भाषा की पत्रिका तहज़ीब-अल-इखलाक़ की शुरुआत की गई थी। सर सैयद आजाद चिन्तन के हिमायती थे और कहा करते थे कि कुरान के आप्त वचनों और आधुनिक विज्ञान द्वारा खोजे प्राकृतिक नियमों में समानतायें हो सकती हैं। हालांकि बाद में अलीगढ़ की धार्मिक कक्षाओं का जिम्मा मौलवियों के पास चला गया था और इसके चलते वहां आधुनिकता के स्वर दब गए थे। सामाजिक तौर पर देखें तो उत्तर प्रदेश के मुसलमान जमींदार ही अलीगढ़ आन्दोलन के आधार थे। और आधुनिक शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि इस आन्दोलन को पारम्परिक मुसलमान अभिजातों द्वारा समर्थन मिलने की वजह यह थी कि उन्हें अब अपने पेशों व व्यापार में उभरते हिन्दू व्यापारियों की घुसपैठ से खतरा लगने लगा था। हालांकि पंजाब में स्थितियां इसके उलट थीं। वहां आर्य समाज के पुनरुत्थानवाद का समर्थन बढ़ने की एक वजह यह थी कि खत्री, आरोड़ा और वाड़िया व्यापारी अब मुसलमान व्यापारियों व उद्यमियों की बढ़ती हैसियत से खतरा महसूस करने लगे थे।

दूसरी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व देवबंद का पुनरुत्थानवादी आन्दोलन दार-उल-उलूम करता था। अंग्रेज विरोधी भावनाओं से लबरेज इस संगठन की स्थापना मोहम्मद क़ासिम नानावतवी और राशिद अदमद गंगोही द्वारा की गई थी। दार-उल-उलूम के ये दोनो संस्थापक **1857** की गदर के वरिष्ठ योद्धा थे, और यह संगठन मामूली व गरीब पृष्ठभूमि के बच्चों को खूब आकर्षित करता था। देवबंदी विचार और संस्था प्रभावशाली बने रहे और उनके मदरसा शिक्षकों के जरिए इसका प्रचार-प्रसार भी होता रहा। यह संस्था कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन करती रही। इसके अन्दर अपने बुनियादी कार्यक्रमों के अलावा कभी-कभार पैन-इस्लामी विचार भी हावी हो जाते थे, जिसके प्रभाव में वह अरब के सुलतान-खलीफा के प्रति राजनिष्ठा जाहिर करने की मांग उठाने लगती थी। इन्हीं पैन-इस्लामी विचारों ने **1897** के कलकत्ता दंगों में खतरनाक भूमिका अदा की थी। लेकिन बीस बरस बाद होने वाले खिलाफत आन्दोलन के दौरान ये विचार साम्राज्यवाद विरोधी ताकत का सबब भी बने थे।

इसी दौर में उर्दू-देवनागरी विवाद और गोरक्षा के दो मुद्दे भी उभरे, जिन पर सवार होकर साम्प्रदायिकता एक अखिलभारतीय परिघटना बन गई। गोरक्षा मुद्दे की गोंद ने कुलीन और सामान्य हिन्दुओं को जोड़कर उन्हें एक मंच पर जुटा दिया था। खेती में गाय के महत्व के मद्देनजर शिक्षित युवक गाय की रक्षा व उसके देखभाल की बातों को भारत की समग्र उन्नति के लिये जरूरी मान लेते थे। उधर, इस आन्दोलन के पैरोकारों ने न्यायालय के जरिए गोहत्या को प्रतिबन्धित करवाने की कोशिशें की, और नगरपालिकाओं ने भी गोकशी व उससे सम्बन्धित खरीद-फरोख्त को प्रतिबन्धित करने वाले नियम जारी कर दिए। कुछ जगहों पर सक्रिय गोरक्षिणी सभायें बूचड़ों को दन्डित करने व मांस की बिक्री जबरन रोकने के अभियान में लग गईं। प्रतिक्रिया में मुसलमान पुनरुत्थानवादी बकरीद के अवसर पर गाय की बलि आयोजित करने लगे और गोकशी को अपने धर्म के लिए जरूरी ठहराने वाला प्रचार करने लगे। पाले खिंच गए थे। **1893** में आज़मगढ़ के मऊ में दंगे भड़क उठे। इस बार मऊ के मुसलमानों की अच्छी-खासी आबादी पर गाजीपुर और बलिया के पड़ोसी जिलों के हिन्दुओं की भीड़ द्वारा हमले किए गए। बलिया और उसके अलावा सारन, गया और पटना में भी दंगे हुए। ध्यान रहे कि इन्हीं जगहों पर पशुओं के बड़े मेले लगा करते थे। इस दौर में सबसे हिंसक दंगे बम्बई में हुए, जिनमें **80** लोगों को जान गंवानी पड़ी थी। दंगों की लपट सुदूरवर्ती जूनागढ़ और रंगून तक पहुंची थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट -**निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति करें।**

1. **1904** में, बंगाल में मैमनसिंह जिला के जमालपुर ब्लाक स्थित .... में एक प्रजा सम्मेलन आयोजित किया गया था।
2. **1905** में बंगाल के ..... के दौरान साम्प्रदायिक सौहार्द की अनेक मिसालें कायम हुई।
3. आर्य समाज ने **1900** के बाद अपने आधार क्षेत्र का विशाल ..... के जरिए गुणात्मक विस्तार किया।
4. दार-उल-उलूम की स्थापना मोहम्मद क़ासिम नानावतवी और ..... द्वारा की गई थी।

7.6 सारांश

ऊपर के वर्णन स्पष्ट करते हैं कि भारत में साम्प्रदायिकता किसी अलगाव में नहीं, बल्कि अपने समय में सक्रिय दूसरे सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों और परिघटनाओं के साथ अंतर्क्रिया करते हुए पनपी थी। सतह पर तो धार्मिक या प्रतीकात्मक दिखने वाले मुद्दे ही दंगों का कारण लगते हैं, लेकिन इन दंगों में प्रभावशाली आर्थिक स्वार्थों की रोटी भी सिंक रही होती थी। यह भी ध्यान देना जरूरी है कि शान्ति काल में जब दंगे नहीं हो रहे होते थे, सम्प्रदायीकरण की परिघटना सक्रिय रहकर अन्य आन्दोलनों के साथ अपना विस्तार करती जा रही थी। और इसी तरह भावी दशकों की राष्ट्रवादी लड़ाई में वह एक प्रमुख खिलाड़ी बन गई।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

तालुकदार : अवध क्षेत्र में जमींदार को तालुकदार कहा जाता था।
शुद्धीकरण : पवित्र करना
धर्मान्तरण : धर्म परिवर्तन
गोकशी : गौ-हत्या

7.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 7.4 के उत्तर
1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य

इकाई 7.5 के प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति

1. कमरिया चर
2. स्वदेशी आन्दोलन
3. शुद्धि कार्यक्रम
4. राशिद अदमद गंगोही

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

W.W. Hunter, *Indian Musalmans,* Calcutta, 1871

C. H. Heimsath, *Indian Nationalism and Hindu Social Reform,* Princeton University Press, 1964

B.B. Majumdar, *History of Indian Social and Political Ideas-From Rammohun to Dayananda*, Calcutta, 1967

Peter Hardy, *The Muslims of British India,* Cambridge South Asian Studies, 1972

J R McLane, *Indian Nationalism and the Early Congress,* Princeton University Press, 1977

Sudhir Chandra, *Communal Consciousness in Late 19th Century Hindi Literature* in Mushirul Hasan (ed.) *Communal and Pan-Islamic Trends in Colonial India*, Delhi 1981

Gyan Pandey, *Rallying Round the Cow; Sectarian Strife in the Bhojpur Region, C. 1881-1917,* Centre for Studies in Social Sciences, Calcutta, Occasional Paper No. 39, 1981

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संदर्भ में साम्प्रदायिकता की अवधारणा, चरित्र एवं विकास पर चर्चा कीजिए।

इकाई आठ

लखनऊ समझौता एवं मूल्यांकन होम रूल लीग आन्दोलन

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8. 3 कांग्रेस और मुस्लिम लीग का लखनऊ पैक्ट

8. 3.1 लखनऊ पैक्ट की पृष्ठभूमि और होम रूल आन्दोलन

8. 3. 2 होम रूल लीग का रास्ता और कार्यवाहियाँ

8. 3. 3 होम रूल आन्दोलन के प्रति सरकार का रवैया

8.4 सारांश

8.5 पारिभाषिक शब्दावली

8.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

1905 के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान स्वराज्य अर्थात् स्वशासन को लक्ष्य बनाया गया था किन्तु औपनिवेशिक सरकार ने जवाब में भारतीयों को नाममात्र के सुधार और निर्मम राजनीतिक दमन का उपहार दिया। कांग्रेस की आपसी फूट, लोकमान्य तिलक तथा अन्य उग्रवादी नेताओं की भारतीय राजनीतिक परिदृश्य से अनुपस्थिति, कांग्रेस की राजनीति पर एक बार फिर नरमपंथियों का प्रभुत्व, एक सीमा तक क्रान्तिकारी आतंकवाद की दिशाहीनता और सरकार की भारत पर मज़बूत पकड़ इसके लिए काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार थी।

1908 में लोकमान्य तिलक के माण्डले निर्वासन से समस्त राष्ट्र में असन्तोष की एक लहर दौड़ पड़ी थी। 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में दिए गए नाममात्र के सुधारों से नरमपंथी भी संतुष्ट नहीं थे। विश्वयुद्ध में भारतीय संसाधनों का युद्ध के लिए खुलकर उपयोग हो रहा था। लोकमान्य तिलक की माण्डले से 1914 में रिहाई तथा भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में श्रीमती एनीबीसेन्ट के पदार्पण से होमरूल आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण विकसित हो रहा था।

प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेने के अपने उद्देश्यों में मित्र-शक्तियों ने लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करना भी शामिल किया था। इस पृष्ठभूमि में सुधारों की आशा में भारतीयों ने तन-मन-धन से युद्ध में अंग्रेज़ों का साथ दिया। पहली बार भारत एक गुलाम देश से शासन करने वाले देश के सहयोगी के रूप में उभर कर आया और इसके कारण भारतवासियों में भी अपनी राजनीतिक, आर्थिक तथा संवैधानिक मांगों को सरकार के सामने उठाते हुए एक नया आत्मविश्वास और एक नया उत्साह दिखाई दिया। अनेक शीर्षस्थ नेताओं ने साम्प्रदायिक सद्भाव तथा राष्ट्रीय एकता को महत्व दिया।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लखनऊ पैक्ट और **1916** के होम रूल आन्दोलन से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से भी परिचित हो सकेंगे -

1. लखनऊ पैक्ट की मुख्य बातें
2. लखनऊ पैक्ट की पृष्ठभूमि और होम रूल आन्दोलन
3. होम रूल लीग का रास्ता और कार्यवाहियाँ
4. होम रूल आन्दोलन के प्रति सरकार का रवैया
5. होम रूल आन्दोलन का मूल्यांकन

8. 3 कांग्रेस और मुस्लिम लीग का लखनऊ पैक्ट

1916 दिसम्बर में, दोनों, अखिल भारतीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में हुए। दोनों सम्मेलनों ने (कांग्रेस ने **29** दिसम्बर और मुस्लिम लीग ने **31** दिसम्बर को) एक साझा प्रस्ताव पारित किया। इस साझा प्रस्ताव के जरिए जिन प्रशासनिक सुधारों की वकालत की गई, वे भारतीय राजनीतिक परिदृष्य के दो सर्वव्यापी व बेहद अहम सवालों को सम्बोधित करते थे। इस प्रस्ताव में भारत में स्वशासन बहाल किए जाने की मांग उठी थी, और सरकार में भारतीयों की संख्या व भागीदारी बढ़ाने वाले निम्न प्रशासनिक सुधारों की पैरोकारी की गई थीः

- केन्द्रीय विधायी काउन्सिल की सदस्य संक्ष्या बढ़कर **150** की जायेगी
- प्रान्तों में विधायी काउन्सिल के अस्सी फीसदी सदस्य निर्वाचित हों और मनोनीत सदस्य केवल बीस फीसद होंगे
- प्रान्तीय विधायिकाओं की कुल निर्धारित सदस्य संख्या बड़े प्रान्तों में कम से कम **125** और छोटे प्रान्तों में **50** से **75** के बीच होगी
- मनोनीत सदस्यों को छोड़कर बाकी सभी सदस्यों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर किया जाएगा
- किसी समुदाय से सम्बन्धित विधेयक तब पारित न होगा अगर विधायी काउन्सिल में समुदाय के दो तिहाई सदस्य उसके विरोध में हों
- काउन्सिल का कार्यकाल **5** वर्ष का रहेगा
- काउन्सिल के अध्यक्ष का चुनाव स्वयं उसके सदस्यों द्वारा किया जायेगा

- इम्पीरियल विधायी काउन्सिल के आधे सदस्य भारतीय होंगे
- इन्डियन काउन्सिल खारिज कर दी जायेगी
- भारतीय मामलों के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का वेतन भारतीय कोष के बजाय ब्रिटेन की सरकार द्वारा दिया जाएगा।
- दो अनुसचिवों में एक भारतीय होगा
- कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग किया जाएगा।

दूसरी तरफ दोनों संगठन निर्वाचन मंडलों के सवाल पर भी एकमत थे, जो हिन्दू-मुसलमान रिश्तों के सवाल पर कांग्रेस और लीग के बीच मित्रता और समझदारी को दर्शाती थी। इस सन्दर्भ में निम्न बातों की वकालत की गई थीः

- केन्द्रीय सरकार में एक तिहाई प्रतिनिधित्व मुसलमानों का रहेगा
- सारे समुदायों के लिये अलग निर्वाचन मंडलों की व्यवस्था रहगी, बशर्ते कोई समुदाय स्वयं संयुक्त निर्वाचन मंडल की मांग न करे ।
- वेटेज प्रणाली अपनाई जाएगी।

इन बातों के अलावा प्रस्ताव में यह भी मांग की गई थी कि सरकारी फौज व जल सेना के कमीशन व गैर कमीशन वाले पदों को भारतीयों के लिए खोला जाएगा और उन्हें वालंटियर के बतौर शामिल किया जाएगा।

इस समय बाल गंगाधर तिलक और एन्नी बेसेन्ट के नेतृत्व वाला होम रूल आन्दोलन लोकप्रियता के चरम पर था। तिलक के होम रूल लीग ने इस अधिवेशन में एक नई परम्परा की नींव भी डाल दी थी। अधिवेशन में प्रतिनिधियों को पश्चिम भारत से लखनऊ पहुँचाने के लिए एक विशेष रेलगाड़ी की व्यवस्था की गई थी। तिलक और उनके समर्थक भारी संख्या में अधिवेशन में पहुँचे थे, और वहाँ उनका खूब स्वागत हुआ था।

अधिवेशन में तिलक इस आलोचना से भी मुखातिब हुए थे कि मुसलमानों को जरूरत से ज्यादा हिस्सा दिया गया है। वहां साफ लफ्जों में तिलक ने कहा था कि, जब तक स्वशासन के अधिकार भारतीयों व भारत के हित में सक्रिय लोगों को मिलते हैं, उन्हें इस बात से फर्क नहीं पड़ता कि किस समुदाय को ये अधिकार मिल रहे हैं। उन्होंने मजबूती से वहाँ कहा कि अंग्रेज सरकार से मुकाबले में सबको एक मंच पर इकट्ठा होना होगा। बहरहाल, कांग्रेस के दैनिक कामकाज के संचालन के लिए एक कार्यकारी समिति गठित किए जाने के तिलक के प्रस्ताव को कांग्रेस के मुख्यतया नरमपंथी नेताओं की कोशिशों के चलते सम्मेलन द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस प्रस्ताव के मूर्तिमान होने में अभी चार बरस का इन्तजार बाकी था, और वह **1920** में गांधी द्वारा तैयार कांग्रेस के संशोधित संविधान के बाद ही स्वीकार किया जा सका था।

कांग्रेस अधिवेशन के समापन पर, उसी पंडाल में, होम रूल लीग के दोनों धड़ों की संयुक्त बैठक भी हुई थी। **1,000** से अधिक प्रतिनिधि इस बैठक में शामिल हुए थे। प्रतिनिधियों द्वारा कांग्रेस-लीग समझौते की सराहना की गई। बैठक को नेताद्वय, तिलक और एन्नी बेसेन्ट, द्वारा संबोधित

किया गया था। लखनऊ से लौटकर दोनों नेता उत्तर, मध्य और पूर्वी भारत के विभिन्न इलाकों के एक व्यापक दौरे के कार्यक्रम में निकल पड़े थे।

8.3.1 लखनऊ पैक्ट की पृष्ठभूमि और होम रूल आन्दोलन

लखनऊ सम्मेलनों में इस साझा प्रस्ताव का पारित किया जाना भारत के राजनीतिक इतिहास का एक अहम क्षण माना जाता है। यह न सिर्फ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग की एकता का क्षण था, बल्कि नरमपंथियों और गरमपंथियों में एक दशक पहले विभाजित हो चुकी कांग्रेस के लिए भी एकता का क्षण था। अपने लेखों में प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस द्वारा बंगाल के मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफोर्ड की हत्या के असफल प्रयास की सराहना करने के लिए बाल गंगाधर तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा लाद दिया गया था। उसके बाद तिलक **6** सालों के लिए मांडले निर्वासित कर दिए गए थे। हालांकि, अपने चरमपंथी विचारों और समाज सुधार के गहन प्रयासों के कारण तिलक इस दौर में काफी मशहूर थे। वे उन कांग्रेसी नेताओं की आलोचना करते थे जो नरम राजनीतिक तरीकों पर चल रहे थे। यही मतभिन्नता कांग्रेस के भीतर गुटबाजी में बदल गई, जिसके कारण वह **1906** के सूरत अधिवेशन मे नरमपंथियों और गरमपंथियों के दो धड़ों में विभाजित हो गई थी।

निर्वासन से तिलक की वापसी के समय भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का परिदृश्य उजाड़ सा था। चारों ओर तीखा दमन जारी था। स्वदेशी आन्दोलन सख्ती से कुचला जा चुका था। कांग्रेस एक वार्षिक तमाशे में बदल चुकी थी। तिलक यह बात समझ गए थे कि एक मंच की कमी पूरा करने के लिए कांग्रेस में शामिल हो जाना जरूरी है। उन्हें इस मंच में व्यापक आन्दोलन की संभावनायें दिख रही थीं। इसलिए वे अपने समर्थकों समेत कांग्रेस में प्रवेश करने की कोशिशें करने लगे। अपने पुराने भाषणों को उन्होंने संशोधित कर लिया, और सरकार को भरोसा दिलाया कि वे ब्रिटेन की वफादार प्रजा हैं, और ऐसे होम रूल का सपना देखते हैं जहां भारत सरकार के अन्दर भारतीयों की उपस्थिति और हैसियत अधिक होगी। गुजरात के फिरोजशाह मेहता जैसे कांग्रेस के नरमपंथी नेता मानते थे कि तिलक का कांग्रेस में लौटना अच्छा नहीं रहेगा। बहरहाल मेहता की मौत के बाद तिलक की कांग्रेस में वापसी का विरोध ठन्डा पड़ गया। दूसरी ओर कलकत्ता के भूपेन्द्रनाथ बोस जैसे नेताओं से तिलक को समर्थन भी मिल रहा था।

इस दौरान कांग्रेस में एन्नी बेसेन्ट काफी प्रभावशाली हो चुकी थीं। थिओसॉफिकल समाज का नेतृत्व करने वाली बेसेन्ट मानती थीं कि भारत में ब्रिटेन के रैडिकल व आयरलैन्ड के होम रूल आन्दोलनों के माडल पर भारत में होम रूल का लागू किया जाना भारत-ब्रिटेन रिश्तों के लिए अहम है। वे मानती थीं कि एक राष्ट्र व्यापी आन्दोलन चलाकर इस लक्ष्य को हासिल करना सम्भव है। वे तिलक के काफी करीब भी थीं। दिसम्बर **1915** में तिलक अपने समर्थकों समेत कांग्रेस में शामिल कर लिए गए। इसी साल कांग्रेस का एक मांग पत्र तैयार करने की प्रक्रिया भी शुरू हुई। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग अपनी बम्बई बैठक में अपना मांग पत्र तैयार करने का फैसला कर चुकी थी। इस दौर में एक युवा पार्टी मुस्लिम लीग पर काफी असर रखती थी, और

मोहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस का हिस्सा थे। वे इस वक्त **1916** के लखनऊ पैक्ट की सफलता के लिए पुरजोर कोशिशें कर रहे थे।

लखनऊ पैक्ट को हम ऐसे क्षण के बतौर समझ सकते हैं जब कांग्रेस व मुस्लिम लीग के नेता अपने मतभेदों को दरकिनार करने की कोशिश कर रहे थे, और एक ऐसे साझा मंच को ढूँढ़ रहे थे जिसके जरिए साझा मकसद की ओर बढ़ा जा सके। इस वक्त दोनों दलों का राजनीतिक मकसद भी साझा जमीन पर खड़ा था।

हालांकि, इसके बाद भी कांग्रेस के जरिए होम रूल आन्दोलन चलाने में न तो तिलक सफल हुए, और न ही एन्नी बेसेन्ट । होम रूल आन्दोलन तेज करने के लिए दोनों, तिलक और एन्नी बेसेन्ट ने होम रूल लीग संगठन बना लिए। तिलक और एन्नी बेसेन्ट के समर्थकों की आपसी नापसन्दगी के चलते एक साझा लीग चलाना संभव न हो सका था। लेकिन दोनों होम रूल लीग अपने लिए एक अलग कामकाज का इलाका चिन्हित करने पर राजी हो गई थीं। तिलक की लीग बम्बई शहर को छोड़कर महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रान्तों व बेरार में सक्रिय थी, जबकि बाकी भारत में एन्नी बेसेन्ट की लीग काम कर रही थी।

8. 3. 2 होम रूल लीग का रास्ता और कार्यवाहियाँ

होम रूल लीग के दोनों संगठनों ने शहरों में बहस-मंडलियाँ और वाचनालय बनाए, व्यापक तौर पर पुस्तिकायें बेचीं और भाषण-व्याख्यान के दौरे आयोजित किए। दिलचस्प बात तो यह है कि ये तरीके नरमपंथी राजनीति के तरीकों से मेल खाते थे, हालाँकि अपनी गहनता में वे नरमपंथियों से बहुत अलग और आगे थे। तिलक की लीग ने अपनी सक्रियता के पहले ही साल में **6** मराठी व **2** अंग्रेजी पुस्तिकाओं की **47,000** प्रतियां बेची थीं। उसका **6** शाखाओं में संगठित कामकाज था, इनमें एक-एक मध्य महाराष्ट्र, बम्बई शहर, कर्नाटक और मध्य प्रान्तों में थीं, जबकि बेरार में उसकी दो शाखायें थीं। दूसरी ओर एन्नी बेसेन्ट की लीग ने भी सितम्बर **1916** तक **26** अंग्रेजी पुस्तिकाओं की तीन लाख प्रतियां बेंच दी थीं। उनकी लीग के प्रावधानों के अनुसार तीन सदस्य एक शाखा का गठन कर सकते थे। इस तरह शहरों, यहां तक कि गांव-समूहों में भी तकरीबन **200** शाखाओं का गठन किया गया था। एक औपचारिक कार्यकारिणी भी थी, जिसके सात सदस्य लीग की **34** संस्थापक शाखाओं द्वारा चुने जाते थे। बहरहाल, अधिकांश काम एन्नी बेसेन्ट और उनके कुछ अनुयायी निपटाया करते थे। सी.पी.रामास्वामी अ्ययर और बीपी वाड़िया एन्नी बेसेन्ट के साथ अड्यार से कामकाज का संचालन किया करते थे।

तिलक ने महाराष्ट्र का दौरा शुरू कर दिया। अपनी यात्रा में हर जगह वे भाषण दे रहे थे और होम रूल की मांग को लोकप्रिय बना रहे थे। भाषणों के दौरान लोगों के साथ सवाल-जवाब भी हुआ करते थे, जिसकी वजह से इस मांग की अवधारणा लोगों को स्पष्ट होती जा रही थी। वे कहते थे कि अब भारत इतना परिपक्व हो चुका है कि वह अपना शासन खुद चला सकता है। भाषाई राज्यों के गठन व स्थानीय भाषा में शिक्षण की जरूरत जैसे मुद्दों को जोड़ते हुए वे स्वराज या

होम रूल की अवधारणा पर अपनी बात कहा करते थे। तिलक अपने भाषणों में हरेक भाषाई समुदाय को शिक्षा और स्वशासन उनकी अपनी भाषा में मुहैय्या कराने पर बल दिया करते थे। अपने भाषाई सिद्धान्त की मिसाल पेश करते हुए उन्होंने **1915** के बम्बई प्रान्तीय सम्मेलन में वी.बी. अलूर को अपनी मातृभाषा कन्नड़ में भाषण देने के लिए कहा था। तिलक वक्तृता कला के धनी थे, जिसके बल पर वे उस वक्त ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों के दरमियान उभरे विवाद को ठन्डा करने में भी कामयाब हुए थे। गैर-ब्राह्मणों ने सरकार को ज्ञापन दिया था और उन्होंने खुद को ब्राह्मणों से पूरी तरह अलग कर लिया था। इसका विरोध किया जा रहा था, लेकिन तिलक ने उन्हें समझाते हुए कहा कि अगर उनका आन्दोलन गैर-ब्राह्मणों को इस बात का यकीन दिला दे कि गैर-ब्राह्मणों की मांगों के प्रति उनकी पूर्ण सहमति और समर्थन है, तो दोनों संघर्ष मिलकर एक हो जायेंगे और मजबूती की ओर बढ़ेंगे।

वे गैर-ब्राह्मणों को भी समझाते थे कि ब्राह्मणों व गैर-ब्राह्मणों में असली फर्क उस शिक्षा का है जो सरकारी नौकरियां दिलाती है। इसलिए वे कहा करते थे कि हमारा असली मकसद शिक्षा हासिल करना होना चाहिए, जिसे हम एकताबद्ध रहकर ही हासिल कर सकते हैं।

तिलक द्वारा की जाने वाली होम रूल की वकालत का वैचारिक आधार भी व्यापक था। वे बेलाग ढंग से कहते थे कि हम सरकार से इसलिये लड़ रहे हैं, क्योंकि वह भारत के हित में कार्य नहीं करती, और इसलिये नहीं कि सरकार चलाने वाले किसी और धर्म के हैं, या उनकी चमड़ी का रंग हमसे अलग है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट -**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।**

1. प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस ने बंगाल के मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफोर्ड की हत्या की थी ।
2. बाल गंगाधर तिलक पर राजद्रोह के मुकदमे के बाद उन्हें **6** साल के लिए मांडले निर्वासित किया गया ।
3. **1906** के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस नरमपंथियों और गरमपंथियों के दो धड़ों में विभाजित हो गई थी।
4. गुजरात के फिरोजशाह मेहता कांग्रेस के गरमपंथी नेता थे।
5. महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस के नरमपंथी नेता थे।

नोट -निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति करें ।

1. **1916** दिसम्बर में, अखिल भारतीय कांग्रेस और ..... के वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में हुए।
2. थिओसॉफिकल समाज की नेता ..... थीं।
3. एन्नी बेसेन्ट की लीग ने सितम्बर **1916** तक **26** अंग्रेजी पुस्तिकाओं की ..... प्रतियां बेंच दी थीं

8.3.3 होम रूल आन्दोलन के प्रति सरकार का रवैया

23 जुलाई, **1916** को भारत की अंग्रेज सरकार ने तिलक को **60,000** रु. जमानत राशि जमा करने के लिए कहा। होम रूल लीग आन्दोलन पर सरकारी दमन का यह पहला वाकया था। मुकदमे में तिलक की पैरवी वकीलों की जिस टीम ने किया, उसका नेतृत्व मोहम्मद अली जिन्ना ने किया था। मजिस्ट्रेटी अदालत में तो तिलक मुकदमा हार गए, लेकिन नवम्बर में उच्च न्यायालय द्वारा वे बरी कर दिये गए थे।

मद्रास सरकार ने अपने एक आदेश के जरिए राजनीतिक सभाओं में छात्रों के जाने पर पाबन्दी लगा दी थी। इस सरकारी कदम की चौतरफा निन्दा हुई। इसके बाद, जून **1917** में मद्रास सरकार ने श्रीमती बेसेन्ट और उनके सहयोगी बी.पी. वाड़िया व जार्ज अरुन्डेल को गिरफ्तार करने का निर्णय किया। सरकार के इस कुकृत्य के विरोध में राष्ट्रव्यापी प्रतिवाद भड़क उठा। विरोध में सर सुब्रमण्यम अïयर ने अपनी नाइट की उपाधि लौटा दी। सरकार के इस दमन का सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि होम रूल लीग से अब तक अलग रहने वाले अनेक कांग्रेसी लीग के सदस्य बनने लगे। इन लोगों में मदन मोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और एम.ए. जिन्ना जैसे कद्दावर नेता शामिल थे। इन सभी नेताओं ने होम रूल लीग के नेताओं की गिरफ्तारी करने के लिए सरकार की घोर भर्त्सना भी की थी।

28 जून **1917** की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में तिलक ने देश में व्यापक पैमाने पर सत्याग्रह आयोजित करने का प्रस्ताव रखा। उनका प्रस्ताव कांग्रेस की सभी प्रान्तीय कमेटियों के पास भेज दिया गया। बेरार और मद्रास कमेटियों ने इस प्रस्ताव पर मोहर भी लगा दी। गांधी की सलाह पर शंकर लाल बैंकर और जमनादास द्वारकादास ने एक हजार ऐसे स्वयंसेवकों के हस्ताक्षर इकट्ठा किए, जो उसी जगह सरकार के नजरबन्दी आदेश का उल्लंघन करने के लिए तैयार थे, जहाँ एन्नी बेसेन्ट गिरफ्तार की गई थीं।

इसके अलावा, होम रूल के ज्ञापन पर दस लाख किसानों और मजदूरों के हस्ताक्षर इकट्ठा करने का एक सघन अभियान छेड दिया गया। गुजरात के शहरों व गांवों में शाखायें खोलने का अभियान भी तेज कर दिया गया।

सरकार को समझ में आ गया कि इस गिरफ्तारी से आन्दोलन और तेज हो गया है। इसलिए ब्रिटेन की सरकार ने अपना रवैया बदलने का फैसला कर लिया। नए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट मान्टेग्यू ने **20** अगस्त **1917** को ब्रिटेन के निचले सदन में घोषणा करते हुए कहा कि, सरकार की नीति प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाने और भारत में एक ऐसी जिम्मेदार सरकार की ओर बढ़ने की रहेगी, जो ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग होगी। इस घोषणा के बाद होम रूल लीग द्वारा स्वशासन की मांग किए जाने को राष्ट्रद्रोह नहीं माना जा सकता था। नतीजतन, सितम्बर **1917** को एन्नी बेसेन्ट रिहा कर दी गईं। विजय के माहौल के बीच जेल से उनकी वापसी हुई, और **1917** के अपने वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस ने उन्हें अपने अध्यक्ष का पद सौंप दिया।

लेकिन अगले ही साल आन्दोलन बिखरने लगा, क्योंकि वहां शामिल नरमपंथी सरकार द्वारा दिए गए सुधारों के वादे को कुछ ज्यादा ही गम्भीरता देने लगे थे। अब ये लोग सविनय अवज्ञा आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्तावों के विरोध में खड़े होने लगे। कई तो **1918** के बाद कांग्रेस में गए ही नहीं। जुलाई **1918** में सरकार ने अपनी सुधार योजनाओं को प्रकाशित कर दिया। कई नेता उसे अपर्याप्त मानते हुए उससे असन्तुष्ट हुए, और उन्हें खारिज कर देना चाहते थे। हालाँकि कुछ दूसरे लोग उन्हें स्वीकार करने के पक्ष में भी थे। इनके अलावा अन्य लोग भी थे, जो स्वीकार करते थे कि ये सुधार बेहद सीमित हैं, लेकिन वे उन्हें एक बार आजमा लिए जाने के पक्ष में भी थे। सरकार द्वारा सुधारों की इस घोषणा के बाद एन्नी बेसेन्ट का पक्ष भी सुसंगत न रहा। वे सत्याग्रह को कभी स्वीकार करती थीं, तो कभी उसे नकारने भी लगती थीं। सत्याग्रह के सवाल पर तिलक की राय तो बिलकुल स्पष्ट थी लेकिन एन्नी बेसेन्ट की असंगतता के कारण वे कुछ खास कर नहीं पाए। सितम्बर **1918** में वैलेन्टाइन चिरोल के खिलाफ अपने द्वारा दायर किये गए मानहानि के मुकदमे की खातिर उन्हें लंदन जाना पड़ा। इसके बाद यह आन्दोलन ही नेतृत्वविहीन हो गया।

8. 4 सारांश

अपनी आन्दोलनात्मक तीव्रता से प्रभाव डालने के अलावा होम रूल आन्दोलन नये इलाकों, समूहों और एक हद तक नयी पीढ़ी के बीच अपना विस्तार भी करने में सफल रहा था। बेसेन्ट के नेतृत्व वाले लीग को मुख्यतया मद्रास शहर और छोटे कस्बों के ब्राह्मणों, संयुक्त प्रान्त के शहरी पेशेवर समूहों, सिंध के अमील अल्पसंख्यकों, गुजरात के युवा उद्योगपतियों, बम्बई शहर और गुजरात के व्यापारियों और वकीलों का समर्थन हासिल हुआ था।

इस आन्दोलन में भावी लड़ाइयों के न जाने कितने ही नेता उभर कर सामने आए थे। इन नये नेताओं में मद्रास के सत्यमूर्ति, कलकत्ता के जितेन्द्रीलाल बनर्जी, इलाहाबाद और लखनऊ के जवाहरलाल नेहरू और कलीक़ुज़्ज़ुमा, बम्बई और गुजरात के जमनादास द्वारकादास, उमर सोभानी, शंकरलाल बैंकर और इन्दुलाल याज्ञिक जैसी भविष्य की हस्तियाँ शामिल हैं। अकेले बम्बई शहर में बेसेन्ट की लीग के **2,500** सदस्य थे, शाताराम चॉल में आयोजित होने वाली सभाओं में **10000-12,000** लोग जुट जाया करते थे। वे अधिकांशतया सरकारी कर्मचारी और औद्योगिक मजदूर हुआ करते थे।

जमनादास द्वारकादास, शंकरलाल बैंकर और इन्दुलाल याज्ञिक ने बम्बई में यंग इन्डिया अखबार निकालना शुरू कर दिया। एक अखिल भारतीय प्रचार कोष का भी निर्माण उनके द्वारा किया गया था। इस कोष का मकसद क्षेत्रीय व अंग्रेजी भाषा में प्रचार पुस्तिकायें छापना था। इन सारी गतिविधियों के कारण राजनीतिक कार्यवाहियाँ अंग्रेजी न जानने वाले तबके तक भी पहुँच सकी थीं। इस आन्दोलन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान शहर और गांवों के बीच कायम किये गए सांगठनिक सम्पर्क थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद के दौर में ये कड़ियां काफी उपयोगी साबित हुईं। होम रूल का विचार एक ऐसा सशक्त विचार था, राष्ट्रवाद के विचार को समझने और स्वराज की कल्पना को लोगों द्वारा जज्ब किए जाने में जिसका बड़ा योगदान रहा है।

8.5 पारिभाषिक शब्दावली

वालंटियर – स्वयंसेवक

लफ्ज - शब्द

मूर्तिमान – यहां पर साकार अर्थ में प्रयुक्त

नरमपंथी – शांतिपूर्ण तरीके से अपनी बात रखने वाले

8.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 8.3.2 के उत्तर

1.असत्य

2.सत्य

3. असत्य

4. असत्य

5. असत्य

रिक्त स्थान की पूर्ति

1. मुलिम लीग

2. एनी बेसेन्ट

3. तीन लाख

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

Bal Gangadhar Tilak, His Writings and Speeches, Madras, 1919

G.P Pradhan and A K Bhagwat, *Lokmanya Tilak: A Biography, Bombay,* 1959

H.F. Owen, *Towards Nation-wide Agitation and Organisation: The Home Rule Leagues, 1915-18' in* D.A. Low*, editor, Soundings in Modern South Asian History,* Berkley and Los Angeles, 1968

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. 1916 के लखनऊ पैक्ट और होम रूल आंदोलन पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई नौ

गांधीजी का प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका का प्रवास

9.3.1 गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका आगमन के समय वहां के प्रवासी भारतीयों की दशा

9.3.2 अन्याय के प्रतिकार हेतु गांधीजी का अभियान

9.3.3 दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके प्रमुख नेताओं से सम्बन्ध

9.3.4 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

9.3.4.1 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा अन्य भारतीय धर्मग्रंथों का प्रभाव

9.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

9.3.5 इण्डियन ओपिनियन

9.3.6 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन

9.3.7 हिन्द स्वराज

9.3.8 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए प्रस्थान

9.5 सारांश

9.6 पारिभाषिक शब्दावली

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

अपने दक्षिण अफ़्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित अपने आदर्शवादी राजनीतिक विचारों और राजनीतिक प्रतिरोध हेतु सत्याग्रह की रणनीति का विकास किया था। गांधीजी के चिन्तन पर भगवद् गीता, रस्किन, थरो, एमर्सन तथा टॉल्सटॉय का विशेष प्रभाव पड़ा था। गांधीजी ने सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली दक्षिण अफ्रीका में गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया। 1909 में उन्होंने 'हिन्द स्वराज' शीर्षक पुस्तिका में अपने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व शैक्षिक विचारों का प्रतिपादन किया।

अपने आन्दोलनों से गांधीजी को अनुबंधित भारतीय मज़दूरों पर लगाए जाने वाले 13 दमनकारी टैक्सों को रद्द कराने में और उनकी भारतीय विधियों से की गई शादियों को मान्यता दिलाने में सफलता प्राप्त की। अपनी विचारधारा का प्रचार करने में और सरकार की दमनकारी नीतियों का खुलासा करने में उन्होंने पत्रकारिता का उपयोग करना दक्षिण अफ़्रीका में ही प्रारम्भ किया था।

1914 में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका छोड़कर भारत वापस लौटने का तथा वहां के राजनीतिक मंच पर प्रवेश करने का निश्चय किया। भारत लौटने से पहले ही गांधीजी वहां एक सफल राजनीतिज्ञ और अहिंसक राजनीतिक आन्दोलन के प्रणेता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। भारतीय राजनीति का अब एक नया अध्याय प्रारम्भ होने वाला था।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक विचारों के विकास तथा उनके राजनीतिक आन्दोलनों की जानकारी देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका आगमन के समय वहां रह रहे भारतीयों के प्रति दक्षिण अफ्रीका की सरकार की नीति
2. गांधीजी के विचारों पर भारतीय व पाश्चात्य चिन्तन का प्रभाव
3. इण्डियन ओपिनियन पत्र की राजनीतिक चेतना के विकास में भूमिका
4. दक्षिण अफ़्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन
5. हिन्द स्वराज

9.3 गांधीजी का दक्षिण अफ़्रीका का प्रवास

9.3.1 गांधीजी के दक्षिण अफ़्रीका आगमन के समय वहां के प्रवासी भारतीयों की दशा

इंग्लैण्ड से बैरिस्टर की षिक्षा प्राप्त कर भारत में अपनी वकालत को स्थापित करने में असफल गांधीजी को 1893 में नाटाल के एक भारतीय मूल के व्यापारी दादा अब्दुल्ला ने अपने व्यापारिक अनुष्ठान 'दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी' के मुकद्दमे की पैरवी करने हेतु डरबन बुलाया। गांधीजी डरबन पहुंचे और वहां पहुंचने के कुछ समय बाद ही उन्हें इस बात का व्यक्तिगत अनुभव हो गया कि एक भारतीय के लिए रंगभेदी नीति कितनी अपमानजनक हो

सकती है। रेलगाड़ी में डरबन से प्रिटोरिया तक के लिए यात्रा करते समय गांधीजी के पास प्रथम श्रेणी का टिकट होने पर भी एक श्वेत सहयात्री द्वारा एक भारतीय कुली के साथ एक ही डिब्बे में बैठकर यात्रा करने पर आपत्ति करने पर पुलिसकर्मी ने आकर उन्हें सामान वाले डिब्बे में बैठकर यात्रा करने को कहा। गांधीजी द्वारा विरोध करने पर उसने पीटरमैरित्ज़बर्ग स्टेशन पर उन्हें जबरन धक्का देकर उतार दिया और उनका सामान भी प्लेटफ़ार्म पर फेंक दिया। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है -

मैरित्ज़बर्ग में एक पुलिस कांन्सटेबिल ने मुझे धक्का देकर ट्रेन से बाहर निकाल दिया। ट्रेन चली गई। मैं जाकर विश्रामकक्ष में बैठ गया। मैं ठन्ड से कांप रहा था। मुझे नहीं पता था कि मेरा सामान कहां पर है और न मैं किसी से कुछ पूछने की हिम्मत कर सकता था कि कहीं फिर मेरी बेइज़्ज़ती न हो। नींद का सवाल ही नहीं था। मेरे मन में उथल-पुथल हो रही थी। काफ़ी रात गए मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि भारत वापस भाग जाना कायरता होगी। मैंने जो दायित्व अपने ऊपर लिया है उसे पूरा करना चाहिए।

गांधीजी को होटलों में भारतीय होने के कारण कई बार ठहरने के लिए कमरा नहीं दिया गया और एक बार डरबन कोर्ट में मैजिस्ट्रेट ने उन्हें पगड़ी उतारने का आदेश दिया किन्तु गांधीजी ने मैजिस्ट्रेट के आदेश का पालन करने के स्थान पर कोर्ट छोड़ना उचित समझा।

इन सब घटनाओं के बाद गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा भारतीयों, चीनियों, अश्वेतों तथा अन्य गैर-यूरोपीय जातियों के निवासियों के साथ अपनाई जाने वाली अन्यायपूर्ण नीतियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की।दक्षिण अफ्रीका में उस समय लगभग दो लाख भारतीय रह रहे थे। इनमें से अधिकांश बंधुआ मज़दूर थे जिनकी कि दशा सबसे दयनीय थी। कुछ स्वतन्त्र मज़दूर थे, कुछ व्यापारी थे और कुछ सरकारी कार्यालयों में कार्यरत क्लर्क व अन्य कर्मचारी थे। खेत बागानों के मालिक भारतीय श्रमिकों के साथ अमानवीय व्यवहार करते थे और उन्हें अर्ध-दासों की स्थिति में रखते थे। भारतीय नागरिक, व्यापारिक एवं सम्पत्ति विषयक अधिकारों से वंचित थे। अपने लिए मानवीय अधिकारों की तो वो कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

सभी भारतीयों को कुली कहकर पुकारा जाता था। गोरों के लिए सुरक्षित पक्के मार्ग पर वो नहीं चल सकते थे। गोरों के साथ वो फुटपाथ पर भी साथ-साथ नहीं चल सकते थे और न ही रात में बिना परमिट लिए कहीं आ-जा सकते थे।

भारतीयों को रेलगाड़ियों में प्रथम व द्वितीय श्रेणी में यात्रा करने का अधिकार नहीं था। अक्सर उन्हें डिब्बे में खड़े होकर या रेलगाड़ी के पांवदान पर खड़े होकर यात्रा करनी पड़ती थी। यूरोपियनों के लिए आरक्षित होटलों में भारतीयों को प्रवेश करने तक की अनुमति नहीं थी। ट्रांसवाल में भारतीयों को रहने के लिए तथा अपनी व्यापारिक गतिविधियां संचालित करने के लिए सबसे गंदा और स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक क्षेत्र उपलब्ध कराया गया था जहां पर न तो पानी की और न उसके निकास समुचित व्यवस्था थी और न ही हवा व रौशनी की पर्याप्त व्यवस्था थी।

पूर्व अनुबंधित मज़दूरों को अनुबंधन से मुक्ति प्राप्त करने के बाद 3 पॉण्ड वार्षिक मतगणना कर देना होता था।

9.3.2 अन्याय के प्रतिकार हेतु गांधीजी का अभियान

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की दीन दशा को सुधारने का संकल्प लिया और जागरूक भारतीयों के साथ मिलकर 1894 में 'नाटाल इण्डियन कांग्रेस' की स्थापना में अपना सहयोग दिया। उन्हें इस संस्था का फ़र्स्ट ऑनरेरी सेक्रेटरी बनाया गया।

गांधीजी ने भारतीयों को मताधिकार दिलाए जाने के लिए ब्रिटिश कोलोनियल सेक्रेटरी जोसेफ़ चेम्बरलेन को स्मरण पत्र भेजा। गांधीजी द्वारा सरकार द्वारा तथा गोरों द्वारा अमानवीय रंगभेदी एवं जातिभेदी नीतियों के विरोध से नाराज़ होकर 1897 में डरबन में गांधीजी पर गोरों की भीड़ ने हमला कर दिया। पुलिस अधीक्षक की पत्नी की सहायता जान बचाकर निकलने में वो सफल हुए किन्तु उन्होंने गांधीजी द्वारा हमलावरों के खिलाफ़ कानूनी कार्रवाही करने से इंकार कर दिया।

अपनी अगली भारत यात्रा में गांधीजी ने क्वेटा में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया और इस अधिवेशन में उन्होंने दखिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की स्थिति में सुधार लाए जाने के लिए एक प्रस्ताव रखा।

बोअर युद्ध के दौरान गांधीजी के नेतृत्व में 1899 में घायलों की सेवार्थ 1100 भारतीय स्वयंसेवकों के 'एम्बुलेन्स कोर्प्स' का गठन हुआ। जनरल रैडवर्स बुलर द्वारा भारतीय स्वयं सेवकों की निःस्वार्थ सेवा-भावना तथा उनके साहस व धैर्य की प्रशंसा की गई। गांधीजी सहित 37 लोगों को वार मैडिल मिले। 1904 में ब्यूबोनिक प्लेग फैलने पर कुलियों की बस्ती में गांधीजी और उनके सहयोगियों ने जाकर रोगियों का उपचार किया। 1906 में जूलू-विद्रोह के दौरान भी गांधीजी के 'एम्बुलेन्स कोर्प्स' ने अपनी निःस्वार्थ सेवा का परिचय दिया।

9.3.3 दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके प्रमुख नेताओं से सम्बन्ध

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति से सदैव जुड़े रहे। अपने भारत दौरों में उन्होंने शीर्षस्थ राष्ट्रीय नेताओं से मिलने का प्रयास किया। गोपाल कृष्ण गोखले से गांधीजी की पहली भेंट 12 अक्टूबर, 1896 को हुई थी। अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने इसका उल्लेख किया है। 1901 में गांधीजी ने कलकत्ते में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया था। वहां उन्होंने गोखले के समर्थन से दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की दयनीय दशा सुधारने हेतु एक प्रस्ताव रखा था। गोपाल कृष्ण गोखले ने गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित किया था और उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को हमेशा के लिए छोड़कर भारत में रहकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश किया था। गांधीजी ने निर्मल गंगा के समान सबको अपनी धारा में समा लेने की क्षमता रखने वाले गोखले को अपना राजनीतिक गुरु माना है।

गांधीजी कांग्रेस के नरमपंथी नेता फ़िरोज़शाह मेहता को हिमालय के समान ऊंचे व्यक्तित्व वाला मानते थे। दादा भाई नौरोजी तथा रमेश चन्द्र दत्त के आर्थिक राष्ट्रवाद ने उनके आर्थिक विचारों को प्रभावित किया था। लोकमान्य तिलक गांधीजी को महासागर की भांति अथाह लगे थे। तिलक के उग्रवादी विचारों से उनका मतभेद था किन्तु वह उनकी उत्कट देशभक्ति के प्रषंसक

थे। इण्डियन ओपिनियन के 1 अगस्त, 1908 के अंक में लोकमान्य तिलक के माण्डले के लिए 6 साल के निर्वासन पर गांधीजी ने लिखा था -

जेल जाना अपमान की नहीं अपितु सम्मान की बात है। हमको अंग्रेज़ों के हाथों कभी न्याय नहीं मिलने वाला। यह अपने मीठे वादों की छुरी से हमको हलाल करती है पर हमको इसके धोखे में नहीं आना चाहिए। महान देशभक्त तिलक का 6 साल का निर्वासन अत्यन्त भयानक है किन्तु हमको इसका शोक नहीं मनाना चाहिए क्योंकि अंग्रेज़ सरकार से हमको ऐसे ही कृत्य की अपेक्षा थी।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में किए जा रहे अपने आन्दोलनों से भारतीयों को निरन्तर अवगत कराया तथा उनकी सफलता के लिए उनसे समर्थन की अपेक्षा भी की। 1909 में लिखित गांधीजी के ग्रंथ हिन्द स्वराज में समकालीन भारतीय राजनीतिक विचारधाराओं पर उनकी गहरी समझ के दर्शन होते हैं।

9.3.4 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

9.3.4.1 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा अन्य भारतीय धर्मग्रंथों का प्रभाव

संस्कृत भाषा में निष्णात न होने के कारण गांधीजी ने बी साल की आयु तक भगवद् गीता का अध्ययन नहीं किया था। 1888-89 के दौरान इंग्लैण्ड में उन्होंने एडविन एर्नोल्ड द्वारा भगवद् गीता के अंग्रेज़ी में किए गए अनुवाद का अध्ययन किया और तभी से गीता उनके जीवन के लिए आध्यात्मिक शब्दकोश बन गई। गीता के निष्काम कर्म तथा कर्मयोग का गांधीजी के विचारों तथा उनकी जीवन-शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा था। निजी कष्टों के प्रति विरक्ति का भाव रखने की क्षमता का विकास भी गांधीजी ने भगवद् गीता से ही सीखा था।

गांधीजी ने अपने चिन्तन पर उपनिषदों के प्रभाव को स्वीकार किया है। जैन एवं बौद्ध धर्म के अहिंसा के सन्देश को उन्होंने अपने जीवन में उतारा था। राम-राज्य की परिकल्पना के विकास तथा अपने वसुधैव कुटुम्बकम के उदार दृष्टिकोण के लिए गांधीजी भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रंथों के ऋणी थे।

9.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

गांधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण पर सबसे अधिक प्रभाव जॉन रस्किन की पुस्तक अन टु दि लास्ट का पड़ा था। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त उन्होंने इसी पुस्तक से ग्रहण किया था। मालिक और कर्मचारी के मध्य सम्बन्ध, आर्थिक समानता की अवधारणा, आधुनिक तकनीक के प्रयोग, तथा भातृत्व की भावना विषयक उनके विचार भी रस्किन की विचारधारा से प्रभावित थे। 25 अगस्त, 1946 के हरिजन में गांधीजी ने लिखा था-

'यदि मनुष्य को प्रगति करनी है और समानता व भातृत्व की भावना के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो उसे अन टु दि लास्ट में दिए गए सिद्धान्तों का अनुपालन करना होगा।'

जॉन रस्किन ने सत्ता प्राप्ति के लिए धन के दुरुपयोग की भर्त्सना की थी और गांधीजी ने धनवानों से यह अपेक्षा की थी कि वे अपने धन का उपयोग मानव जाति के कल्याण हेतु करें न कि अधिक से अधिक लोगों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में।

लियो टॉल्सटॉय ने नैतिकता, सत्य और अहिंसा को मनुष्य के उत्थान के लिए नितान्त आवश्यक बताया था। गांधीजी की विचारधारा पर टॉल्सटॉय की पुस्तक दि किंगडम ऑफ़ गॉड इज़ विदिन यू का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। इस पुस्तक में टॉल्सटॉय ने अहिंसा की महत्ता को दर्शाया है और यह सन्देश दिया है कि अन्यायी की हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से और पशु-बल का सामना नैतिक बल से करना चाहिए। टॉल्सटॉय की ही भांति गांधीजी का व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा में विश्वास नहीं था और वह संसाधनों का उपयोग मानव कल्याण के निमित्त किया जाना श्रेयस्कर समझते थे। गांधीजी ने सादगी भरा नैतिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा भी टॉल्सटॉय से प्राप्त की थी। ब्रह्मचर्य की महत्ता का पाठ भी उन्होंने टॉल्सटॉय के विचारों में पढ़ा था। 1906 गांधीजी ने व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का निश्चय किया।

टॉल्सटॉय का सन्देश था - ***बैक टु दि लैण्ड***

सादगी भरे, छल-कपट से दूर, आत्मनिर्भर ग्रामीण जीवन के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। गांधीजी के ग्राम्य-विकास एवं ग्राम-स्वराज्य विषयक विचारों पर टॉल्सटॉय के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। टॉल्सटॉय के जीवन दर्शन को अपनाने के लिए गांधीजी ने 1910 में टॉल्सटॉय फ़ार्म की स्थापना की थी।

हेनरी डेविड थरो को अमेरिका में दास प्रथा के उन्मूलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने का श्रेय दिया जाता है। उनकी पुस्तक सिविल डिस-ओबिडियेन्स के राजनीतिक दर्शन का गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा व रणनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था। थरो को उन्होंने अपने राजनीतिक मार्गदर्शकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया था। 1906 में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के विरुद्ध आन्दोलन करते समय उन्होंने थरो की सविनय अवज्ञा की रणनीति का अनुगमन किया था। 1907 में उन्होंने अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन में थरो के विचारों का प्रकाशन किया था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी गांधीजी ने सिविल डिस-ओबिडियेन्स के सन्देश का सदैव निष्ठापूर्वक अनुगमन किया था। अन्याय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण प्रतिरोध की रणनीति का विकास करने में गांधीजी ने थरो के प्रभाव को स्वीकार किया था।

एमर्सन की भांति गांधीजी शिक्षा का उद्देश्य किताबी ज्ञान नहीं अपितु चरित्र निर्माण मानते थे। एमर्सन के विचार से शिक्षा का लक्ष्य किताबी ज्ञान अर्जित कराना नहीं अपितु अपने कर्तव्यों का बोध कराना है। गांधीजी दक्षिण अफ़्रीका में 'एमर्सन क्लब' से सम्बद्ध रहे। गांधीजी 'लन्दन एमर्सन क्लब' के भी सदस्य रहे। एमर्सन का कथन है -

अपने धर्म की अपने कर्मों में अभिव्यक्ति दो।

तथा

अपने जीवन में सत्य का प्रयोग करके ही तुम सत्य के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सकते हो।

गांधीजी की आत्मकथा माय एक्सपेरीमेन्ट्स विद ट्रुथ पर एमर्सन के विचारों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

9.3.5 इण्डियन ओपिनियन

गांधीजी की दृष्टि में पत्रकारिता को समाजसेवा तथा मानव-कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए था। धनोपार्जन अथवा सत्ता-प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर की जाने वाली पत्रकारिता उनके विचार से निन्दनीय थी। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता में गांधीजी का अटूट विश्वास था। किसी भी सभ्य देश के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता उनकी दृष्टि में एक ऐसी अमूल्य निधि थी जिसको खो जाने से उस देश को पहुंचने वाली हानि का हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता था।

दक्षिण अफ्रीका के यूरोपीय समुदाय को वहां रह रहे भारतीयों की समस्याओं, आवश्यकताओं तथा उनके मुद्दों से परिचित कराने के उद्देश्य से अपने मुवक्किलों, प्रतिष्ठित भारतीयों तथा 'नाटाल इण्डियन कांग्रेस' के सहयोग से नाटाल में 6 जून, 1903 को मनसुख लाल नज़र के सम्पादन में गुजराती, तमिल, हिन्दी और अंग्रेज़ी में गांधीजी ने इण्डियन ओपिनियन का प्रकाशन प्रारम्भ किया। बाद में मात्र गुजराती और अंग्रेज़ी में इसका प्रकाशन किया जाने लगा। 1904 में डरबन के निकट स्थित फ़ीनिक्स फ़ार्म से इसका प्रकाशन किया जाने लगा।

प्रारम्भ में इण्डियन ओपिनियन ने ब्रिटिश कानून के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए कृषि फ़ार्मों में बंधुआ मज़दूरों की दुर्दशा, उनके द्वारा की गई आत्महत्याओं की वारदातों और उनके मालिकों के उन पर अमानवीय अत्याचारों का खुलासा किया जाता था। 1906 से यह पत्र सरकार की दमनकारी रंगभेदी, जातिभेदी नीतियों का खुलकर विरोध करने लगा और एशियन जातियों के लिए बनाए गए अन्यायपूर्ण रजिस्ट्रेशन कानून के विरुद्ध आन्दोलन का मुख्य स्वर बन गया। ब्रायन गैब्रील ने इसके फ़ोटोग्राफर तथा हेनरी पोलाक ने इसके सम्पादक के रूप में इस पत्र को दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों के राजनीतिक आन्दोलन का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज़ बना दिया। 1906 से 1913 तक इसने भारतीयों के सत्याग्रह का जीवन्त चित्रण किया। अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन के विषय में गांधीजी ने कहा था -

'इण्डियन ओपिनियन मेरे जीवन का अभिन्न अंग था। इसके पन्नों में अपनी आत्मा की पुकार और सत्याग्रह के सिद्धान्त डाल देता था। अपने सिद्धान्तों के क्रियान्वयन की विस्तृत सूचना भी मैं इसी पत्र के माध्यम से देता था। इण्डियन ओपिनियन के बिना सत्याग्रह असम्भव था। इस पत्र ने मुझे आत्म-संयम का प्रशिक्षण दिया था।'

इण्डियन ओपिनियन ने स्थानीय भारतीय आन्दोलनकारियों में साहस, त्याग और बलिदान की भावना का विकास किया और अन्ततः रंगभेदी व जातिभेदी रजिस्ट्रेशन कानून को रद्द करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

9.3.6 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन

गांधीजी ने 1904 में नाटाल में फ़ीनिक्स फ़ार्म की स्थापना की। इसी फ़ार्म से इण्डियन ओपिनियन का अंग्रेज़ी और गुजराती में प्रकाशन किया गया।

नैटाल की सरकार ने एक ऐसा विधेयक प्रस्तावित किया जो कि प्रवासी भारतीयों से मताधिकार वापस ले सकता था। इस स्थिति में गांधीजी ने अन्याय का प्रतिकार करने का निश्चय किया।

1906 में 11 सितम्बर को ट्रांसवाल में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के अन्तर्गत आठ वर्ष से अधिक आयु के सभी भारतीयों के लिए अपने अंगूठे के निशान वाले जातिभेदी पास रखने की

अनिवार्यता के विरोध में गांधीजी द्वारा जोहेन्सबर्ग के एम्पायर थियेटर में आयोजित सभा में 3000 भारतीय सम्मिलित हुए। इस सभा में गांधीजी ने कहा -

हम जैसे लोगों के लिए बस एक ही रास्ता है, हम मर सकते हैं पर ऐसे कानून के सामने घुटने नहीं टेकेंगे। अगर और लोग पीछे हट भी गए तो मैं अकेला रह कर भी इस अन्याय के खिलाफ़ अपनी लड़ाई जारी रक्खूंगा।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के नेतृत्व में प्रथम सत्याग्रह का प्रारम्भ किया गया। गांधीजी ने 'पैसिव रेज़िज़टेन्स ऐसोसियेशन' का गठन किया। इस संगठन ने भारतीयों से अपील की कि वो रजिस्ट्रेशन अर्थात् पंजीकरण कार्यालयों का बहिष्कार करें। ट्रांसवाल सरकार द्वारा इस आन्दोलन को तोड़ने के अथक प्रयासों के बाद भी भारतीय मूल के मुट्ठी भर नागरिक (30 नवम्बर, 1907 तक मात्र 519) ही अपना पंजीकरण कराने रजिस्ट्रेशन कार्यालय पहुंचे। गांधीजी को पंजीकरण विधेयक का विरोध करने के आरोप में 2 माह का कारावास भी दिया गया। गांधीजी 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' को रद्द कराने में इंग्लैण्ड की सरकार की मदद लेने के उद्देश्य से लन्दन गए। इस जातिभेदी कानून का वापस ले लिया गया किन्तु 1907 में ट्रांसवाल में स्वशासन की स्थापना के बाद इसे फिर से लागू कर दिया गया।

विडम्बना यह थी कि दक्षिण अफ्रीका में एक ओर ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन रहकर भी श्वेत समुदाय द्वारा स्वशासन के लिए संघर्ष किया जा रहा था तो दूसरी ओर भारतीयों, चीनियों, अश्वेतों तथा अन्य समुदायों के लिए किसी भी प्रकार के अधिकार की बात उठाना तक अपराध माना जा रहा था।

1908 में 16 अगस्त और फिर 23 अगस्त को हमीद मस्जिद के सामने 3000 सत्याग्रहियों द्वारा जातिभेदी एवं अपमानजनक रजिस्ट्रेशन सर्टिफ़िकेट्स जलाए गए। 2000 से अधिक आन्दोलनकारियों को जेल में डाला गया। गांधीजी ने चीनी नेता ल्युंग क्विन के साथ मिलकर आन्दोलन जारी रखा। अन्त में ल्युंग क्विन तथा गांधीजी का जनरल स्मट्ज़ से समझौता हो गया। जनरल स्मट्ज़ ने अपना वादा तोड़ दिया और एक बार फिर गांधीजी तथा उनके सहयोगियों ने इस अन्यायपूर्ण कानून के विरुद्ध अपना संघर्ष प्रारम्भ कर दिया।

1910 में गांधीजी ने कैद किए गए आन्दोलनकारियों के परिवारों के भरण-पोषण हेतु टॉल्सटॉय फ़ार्म की स्थापना की। इस फ़ार्म में सामुदायिक जीवन तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए फ़ार्म में रहने वालों को प्रषिक्षण दिया गया।

1912 में गोपाल कृष्ण गोखले दक्षिण अफ़्रीका पहुंचे जहां उन्होंने गांधीजी के आन्दोलन को भरपूर समर्थन दिया। गोखले के कहने पर गांधीजी के आन्दोलन में पीयर्सन तथा सी0 एफ़0 एन्ड्रूज़ शामिल हुए।

13 अक्टूबर, 1913 को पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉन्ड वार्षिक टैक्स लगाए जाने के विरोध में डरबन/जोहनेसबर्ग रेल्वे लाइन पर 29 अक्टूबर 2000 से अधिक मज़दूरों, खानकर्मियों की हड़ताल हुई। जनरल स्मट्ज़ का हडताल कुचलने का प्रयास निष्फल हुआ। मिलों, होटलों, जलपान गृहों में कार्यरत भारतीय कर्मचारियों की हड़ताल के कारण इन सबके कामकाज में बाधा पहुंची तथा घरेलू भारतीय नौकरों के भी हड़ताल में षामिल होने की वजह से गोरों के घरों का कामकाज भी ठप्प पड़ गया। मजबूर होकर सरकार ने हड़तालियों के साथ समझौते की वार्ता

प्रारम्भ कर दी और अन्ततः पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉण्ड के वार्षिक टैक्स लगाए जाने के कानून को रद्द कर दिया गया।

1913 में ही दक्षिण अफ्रीका के सुप्रीम कोर्ट द्वारा गैर-ईसाई विधियों (हिन्दू, मुस्लिम, पारसी आदि) से किए गए विवाहों को अमान्य घोषित कर दिया गया। भारतीयों के लिए अपने विवाहों का पंजीकरण कराना भी आवश्यक हो गया। इस प्रकार गैर पंजीकृत व अमान्य विवाहों से उत्पन्न सन्तानें भी स्वतः अवैध हो जातीं। गांधीजी ने इस अन्यायपूर्ण फ़ैसले के विरुद्ध अपील की परन्तु सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। विवश होकर गांधीजी ने 6 नवम्बर, 1913 को इस जातिभेदी कानून के विरुद्ध सत्याग्रह यात्रा का नेतृत्व कर ट्रांसवाल की सीमा को पार किया। उनके साथ 127 स्त्रियां, 57 बच्चे और 237 पुरुष आन्दोलनकारी थे। गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया परन्तु आन्दोलन पूर्ववत निर्बाध जारी रहा। गोपाल कृष्ण गोखले ने गांधीजी के इस आन्दोलन के समर्थन में भारत भर में भ्रमण कर उनके आन्दोलन के लिए धन एकत्र किया। गांधीजी को भारतीय व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा भारतीय शासकों से अपने आन्दोलन हेतु आर्थिक सहायता भी प्राप्त हुई। भारत के वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज ने भारतीयों पर दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा किए जा रहे तथाकथित अत्याचारों की निष्पक्ष जांच कराए जाने की मांग की। लॉर्ड हार्डिंज के इस कदम की लन्दन और प्रेटोरिया में आलोचना भी की गई परन्तु इस जातिभेदी व रंगभेदी अन्यायपूर्ण फ़ैसले पर पुनर्विचार करने के लिए अब अनुकूल समय आ गया था। अन्ततः जनरल स्मट्ज़ को आन्दोलनकारियों से समझौते की बात करनी पड़ी। अपने अनुबंध से मुक्त हो चुके स्वतन्त्र मज़दूरों पर से 3 पॉण्ड वार्षिक का मतगणना कर हटा लिया गया। भारतीय विधियों (गैर ईसाई विवाह विधियां जैसे हिन्दू, मुस्लिम, पारसी विवाह विधियां आदि) से किए गए विवाहों को मान्यता दे दी गई। अब दक्षिण अफ्रीका आने के लिए केवल आदिवासी प्रमाणपत्र पर अंगूठे का निशान लिया जाना आवश्यक रह गया।

गांधीजी ने अपने 21 वर्षीय दक्षिण अफ़्रीका प्रवास में सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया। अपनी विचारधारा का प्रचार करने में और सरकार की दमनकारी नीतियों का खुलासा करने में उन्होंने पत्रकारिता का उपयोग करना दक्षिण अफ़्रीका में ही प्रारम्भ किया था। राजनीतिक आन्दोलनों में बच्चों और स्त्रियों सहित आम आदमी की सहभागिता के महत्व को भी उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में ही जाना था। ग्राम्य-विकास की महत्ता को भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ही जाना था। गांधीजी ने साम्प्रदायिक एकता व सामुदायिक एकता को राष्ट्रीय एकता व संगठित राजनीतिक आन्दोलन की आवश्यक शर्त मान लिया था। किसी क्षेत्र विशेष अथवा समुदाय विशेष के हितों लिए संघर्ष करने के स्थान पर उनका जीवन सभी क्षेत्रों के समस्त समुदायों के निवासियों के कल्याण हेतु समर्पित था। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही गांधीजी ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित किया था। सर्व-धर्म सम्भाव, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना का विकास भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रहकर ही किया था।

9.3.7 हिन्द स्वराज

1909 में 13 नवम्बर से 22 नवम्बर के मध्य गांधीजी ने एस0एस0 किल्डोनान कैसल नामक जहाज में इंग्लैण्ड से केपटाउन जाते समय गुजराती भाषा में महान दार्शनिक प्लैटो की पुस्तक रिपब्लिक में अपनाई गई प्रश्नोत्तर शैली (प्रश्नकर्ता- डॉक्टर प्रान्जीवन मेहता तथा उत्तरदाता - गांधीजी) में इस लघु पुस्तिका को लिखा था। मूल गुजराती पुस्तिका पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाए जाने के कारण गांधीजी ने स्वयं अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद कर सर्वप्रथम इसका क्रमबद्ध प्रकाशन अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन में कराया था। यह पुस्तिका 20 अध्यायों तथा 2 परिशिष्टों में विभक्त है। इस पुस्तिका में कांग्रेस, कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता, बंगाल विभाजन, स्वराज की परिभाषा, इंग्लैण्ड की दशा, पाश्चात्य सभ्यता, भारत की दशा, सच्ची सभ्यता, भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग, इटली और भारत, विस्फोटक सामग्री, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, मशीनीकरण, मुक्ति और हिन्द स्वराज की चर्चा की गई है। अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने के लिए गांधीजी ने इस पुस्तिका में अपने पाठकों को प्लैटो, हैनरी डेविड थरो, एमर्सन, जॉन रस्किन, मेज़िनी, लियो टॉल्सटॉय, दादा भाई नौरोजी तथा आर0 सी0 दत्त के विचारों का अध्ययन करने की सलाह दी है।

ईश्वरहीन, नैतिक मूल्यों से सर्वथा वंचित पूंजीवादी एवं भौतकतावादी आधुनिक मानव सभ्यता में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को गांधीजी समर्थ राष्ट्रों के लिए स्वाभाविक मानते हैं। परन्तु भारत की परतन्त्रता के लिए गांधीजी अंग्रेज़ों को नहीं बल्कि नैतिक मूल्यों का परित्याग कर पूंजीवाद की पोषक वैधानिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को अपनाने वाले स्वयं भारतीयों को ही दोषी ठहराते हैं। गांधीजी की दृष्टि में भारतीय अपना कल्याण उसी स्थिति में कर सकते हैं जब कि वे अपने लालच और भोगवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाकर प्राचीन काल की आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से अपना लें। उनकी दृष्टि में व्यक्ति का महत्व राजनीतिक संस्थाओं की तुलना में अधिक है। गांधीजी सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित राजनीतिक प्रतिरोध में बड़े से बड़े और समर्थ से समर्थ शासक की दमनकारी नीतियों व व्यवस्थाओं को पलटने की असीमित शक्ति में विश्वास करते हैं।

गांधीजी पाश्चात्य राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक, विधि-परक, सैनिक तथा शैक्षिक संस्थाओं को भारत के लिए अनुपयोगी मानते हैं। उनकी दृष्टि में 'स्वराज' कोई पाश्चात्य राजनीतिक अवधारणा नहीं है अपितु यह अवधारणा मूलतः भारतीय है जिसमें कि शक्ति के विकेन्द्रीकरण और व्यक्तियों तथा समुदाय के माध्यम से स्वशासन की व्यवस्था की जाती है। 'स्वराज' का राजनीतिक अर्थ नैतिक मूल्यों पर आधारित स्वशासन है और इसकी चरम परिणति स्वतन्त्रता में है। इसका आर्थिक अर्थ है - करोड़ों देशवासियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता। 'स्वराज' का सर्वोच्च आदर्श सभी वाह्य नियन्त्रणों से मुक्त हो कर आत्म-संयम रखते हुए स्वशासन प्राप्त कर मुक्ति अथवा मोक्ष पाना है।

9.3.8 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए प्रस्थान

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेदी व जातिभेदी गोरी सरकार को अपनी अन्यायपूर्ण नीतियों को बदलने के लिए बाध्य कर अपने राजनीतिक जीवन का प्रथम अध्याय सम्पन्न कर लिया था।

गोपालकृष्ण गोखले उन्हें भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने का पहले ही निमन्त्रण दे चुके थे। गांधीजी के लिए अब भारत लौटकर अपने सत्य व अहिंसा के प्रयोगों को व्यापक आधार देना आवश्यक हो गया था। 1914 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़कर वापस भारत लौटने का निश्चय किया। 1915 के प्रारम्भ में गांधीजी स्वदेश लौटे और वहां पहुंचते ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई जान फूंक दी।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1. गांधीजी के दर्शन पर पाश्चात्य चिन्तकों का प्रभाव।
2. इण्डियन ओपिनियन
3. हिन्द स्वराज

9.5 सारांश

गांधीजी को 1893 में नाटाल के एक भारतीय मूल के व्यापारी दादा अब्दुल्ला ने अपने व्यापारिक अनुष्ठान के मुकद्दमे की पैरवी करने हेतु डरबन बुलाया। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार की रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति से सदैव जुड़े रहे। गोपाल कृष्ण गोखले को गांधीजी ने अपना राजनीतिक गुरु माना।

गीता के निष्काम कर्म तथा कर्मयोग का गांधीजी के विचारों तथा उनकी जीवन-शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

गांधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण पर सबसे अधिक प्रभाव जॉन रस्किन की पुस्तक अन टु दि लास्ट का पड़ा था। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त उन्होंने इसी पुस्तक से ग्रहण किया था।

गांधीजी की विचारधारा पर टॉल्सटॉय की पुस्तक दि किंगडम ऑफ़ गॉड इज़ विदिन यू का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। गांधीजी के अहिंसा, नैतिक बल, ब्रह्मचर्य, ग्राम्य-विकास एवं ग्राम-स्वराज्य विषयक विचारों पर टॉल्सटॉय के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था।

हेनरी डेविड थरो की पुस्तक सिविल डिस-ओबिडियेन्स के राजनीतिक दर्शन का गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा व रणनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

एमर्सन की भांति गांधीजी शिक्षा का उद्देश्य किताबी ज्ञान नहीं अपितु चरित्र निर्माण मानते थे।

गांधीजी का पत्र इण्डियन ओपिनियन दक्षिण अफ्रीका की सरकार की दमनकारी रंगभेदी, जातिभेदी नीतियों का खुलकर विरोध करता था।

1906 में 11 सितम्बर को ट्रांसवाल में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के विरोध में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में प्रथम सत्याग्रह का प्रारम्भ किया। 1908 में भी इस कानून के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। 1913 में पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉन्ड वार्षिक टैक्स लगाए जाने के विरोध में मज़दूरों, खानकर्मियों, मिलों, होटलों, जलपान गृहों में कार्यरत भारतीय कर्मचारियों तथा गोरों के घरेलू भारतीय नौकरों की हड़ताल हुई। अन्ततः पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉण्ड के वार्षिक टैक्स लगाए जाने के कानून को रद्द कर दिया गया। 1913 में ही अनुबंधित भारतीय मज़दूरों के गैर-ईसाई विधियों से किए गए विवाहों को अमान्य घोषित किए जाने पर गांधीजी ने सत्याग्रह यात्रा का नेतृत्व किया।

गांधीजी ने अपने 21 वर्षीय दक्षिण अफ्रीका प्रवास में सत्य, अहिंहसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया।

1909 में लिखित गांधीजी की पुस्तिका हिन्द स्वराज में भारतीय राजनीतिक चर्चा, स्वराज की परिभाषा, इंग्लैण्ड की दशा, पाश्चात्य सभ्यता, भारत की दशा, सच्ची सभ्यता, भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग, विस्फोटक सामग्री, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, मशीनीकरण, मुक्ति और हिन्द स्वराज की चर्चा की गई है। गांधीजी सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित राजनीतिक प्रतिरोध से बड़े से बड़े और समर्थ से समर्थ शासक की दमनकारी नीतियों व व्यवस्थाओं को पलटने की असीमित शक्ति में विश्वास करते हैं।

गोपालकृष्ण गोखले गांधीजी को भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने का पहले ही निमन्त्रण दे चुके थे। गांधीजी के लिए अब भारत लौटकर अपने सत्य व अहिंसा के प्रयोगों को व्यापक आधार देना आवश्यक हो गया था। 1914 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़कर वापस भारत लौटने का निश्चय किया। अन्याय व दमन से पीड़ित भारतीय अपने उद्धार के लिए एक करिश्माई महानायक की प्रतीक्षा में थे और उन्हें वह 1915 में गांधीजी के रूप में प्राप्त हो गया था।

9.6 पारिभाषिक शब्दावली

बैक टु दि लैण्ड - फिर से अपनी ज़मीन, अपने गांवों से जुड़ो
सिविल डिसओबिडियेन्स - सविनय अवज्ञा
निलहे साहब - नील के बागानों के मालिक

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 9.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव
2. देखिए 9.3.5 इण्डियन ओपिनियन
3. देखिए 9.3.7 हिन्द स्वराज

9.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 3), नई दिल्ली, 1984
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बॉम्बे, 1969
चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979
चन्द्रा, बिपन तथा अन्य - इण्डियाज़ स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, नई दिल्ली, 1988

9.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गांधी, एम0 के0 - हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिंग्ज़, कैम्ब्रिज, 1947
2. सील, अनिल - दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म, कैम्ब्रिज, 1968

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास की राजनीतिक उपलब्धियों का आकलन कीजिए।